सिद्धयोग

संस्थापक
योगयोगेश्वर अनन्तश्री
चन्दमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का
प्रतिपादक मासिक

वर्ष : 40; अंक : 11
फरवरी/मार्च

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन

अमृत-कण

आददीत परां विद्यां प्रयत्नादवरादपि।
अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि।।

(महर्षि मनु)

अर्थात् स्त्री रत्न को भले ही वह कुलीन न हो, अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करो और नीच व्यक्ति की सेवा करके उससे भी श्रेष्ठ विद्या सीखने का प्रयत्न करो। चाण्डाल द्वारा भी श्रेष्ठ धर्म की शिक्षा ग्रहण करो।

◆ ◆ ◆

सर्वभूतेषु चात्मनं सर्वभूतानि. चात्मनि।
समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति।।

(मनुस्मृति 12/91)

अर्थात् सम्पूर्ण चराचर जीवों में आत्मा को तथा आत्मा में सम्पूर्ण जीवों को देखता हुआ आत्मयाजी (ब्रह्मार्पण न्याय से ज्योतिष्टोमादि करने वाला) स्वराज्य अर्थात् मुक्ति को पाता है।

◆ ◆ ◆

आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितं।
व्यापारैर्बहु कार्यभार गुरुभिर्कालो न विज्ञायते।।
ज्ञात्वा जन्म-जरा-विपत्ति-मरणं त्रासश्च नोत्पद्यते।
पीत्वा मोहमयी प्रमाद मदिरां उन्मत्तभूतं जगत्।।

(भर्तृहरि)

रोज-रोज सूर्य के निकलने और छिप जाने से आयु का एक-एक दिन क्षीण होता जा रहा है। व्यापार और कार्यभार की अधिकता से समय का ज्ञान नहीं हो पाता। रोज्-रोज मनुष्य जरा जन्म-मरण की सूचनायें पाता रहता है किन्तु फिर भी मन में कुछ भय उत्पन्न नहीं होता, वह मोहमयी प्रमाद मदिरा को पी कर पागल सा हुआ घूम रहा है। यही कारण है कि अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य जन्म, मदान्धों की तरह बीतता चला जा रहा है; किन्तु इसकी दुर्लभता की चेतावनी का स्मरण किसी को नहीं हो पाता।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

वर्ष : 40
अंक : 11–12
(संयुक्तांक)

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्यौमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् आतुर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

फरवरी
मार्च
2008

लक्ष्मीर्मेधा धरा पुष्टिर्गौरी तुष्टिः प्रभा धृतिः।
एताभिः पाहि तनुभिरष्टाभिर्मा सरस्वती।।

हे सरस्वती ! लक्ष्मी, मेधा, धरा, पुष्टि, गौरी, तुष्टि, प्रभा धृति – इन आठ मूर्तियों से मेरी रक्षा करो।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष
एवं गुरु भाई–बहिन

कुछ झाँकियाँ ...

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय 13
3. आत्मा क्या है? – डॉ. जे. पी. शर्मा 15
4. अष्टांग योग – डॉ. अभिराम शर्मा 17
5. ध्यान – श्री जनक कुलश्रेष्ठ 21
6. मेरी विनती सुनो करतार – श्री मोहन स्वरूप गोस्वामी 24
7. प्राणायाम का शरीर पर प्रभाव – स्वामी कुवलयानन्द जी 25
8. गंगापुर सिटी में बही योग की गंगा – श्री संतोष कुमार शर्मा 30
9. श्री गुरुकृपा : कष्ट रहित मृत्यु – श्री केशवदेव उपाध्याय 31
10. जब भीष्म की प्रतिज्ञा भंग हुई – श्री वेदव्रत द्विवेदी 35
11. स्वास्थ्य चर्चा 37
12. दाता के दरबार में – श्री जगदीश राय बंसल 38

एक प्रति	: रु.	11.00
वार्षिक शुल्क	: रु.	120.00
द्विवार्षिक	: रु.	210.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.	850.00

संयम और सिद्धियाँ

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

मनुष्य अपने प्रयत्न से अष्टांग योग की साधना करता हुआ क्रमशः धारणा, ध्यान, समाधि का अभ्यास करता हुआ अपने मन को संयमित कर सकता है। अष्टांग योग का अर्थ है कि वह महामुनि पातंजलिदेव के बतलाये हुए योग के आठों अंगों की साधना बाकायदा करता हुआ अपने पुरुषार्थ से समाधि को प्राप्त होकर संयम तक पहुँच जाये। यह स्थिति साधक अपने प्रयत्न से ही उपलब्ध कर सकता है एवं गुरुदेव की महान कृपा को पाकर तो सब कुछ सम्भव हो ही जाया करता है। श्री गुरुदेव के परम अनुग्रह से या अपने प्रयत्न से जिस भी प्रकार से मनुष्य उद्यम के साथ अपने आपको संयम तक बढ़ाते हैं फिर उनके लिए सिद्धियों का द्वार खुल जाता है। शक्ति प्राप्ति के दिव्य साधनों का कुछ वर्णन सिद्धयोग के ग्यारहवें अंक में प्रकाशित किया गया है। उस लेख में संयम के अतिरिक्त शक्ति प्राप्ति के और भी अनेक साधनों का वर्णन किया गया है। सिद्धि मनुष्य की अपनी शक्ति है। शक्ति ही सब कामों में प्राणी मात्र की लक्ष्यीभूत बनी रहा करती है। संसार में जन्म लेने वाले हर व्यक्ति का सिद्धि प्राप्त करना ही स्वाभाविक लक्ष्य रहता है क्योंकि सिद्धि ही उसका अपना बल है। हमारे ऋषि स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं।

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।

अर्थात् आत्मपद की प्राप्ति बलहीन मनुष्य को नहीं हुआ करती। अतः यह परम आवश्यक है कि मनुष्य ज्यों-ज्यों किसी भी प्रकार अपनी साधनाओं की ओर प्रगति करे त्यों-त्यों ही उसका सिद्धि भाजन हो जाना भी निहायत आवश्यक है। सिद्धियों के विषय में हमें योग दर्शन बतलाता है:-

ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः।

अर्थात प्रातिभज्ञानादिक सिद्धियाँ जब योगी को पैदा होती हैं व समाहित चित्त में उपसर्गभूत मानी जाती हैं। किन्तु वे ही सिद्धियाँ समाधी से अतिरिक्त उत्थानावस्था के चित्त में सिद्धियाँ ही योगी का अपना बल होती हैं। योग-दर्शन के उपरोक्त सूत्र का आधारभूत लेकर बहुत से लोग सिद्धि प्राप्ति की निन्दा किया करते हैं किन्तु बात इस प्रकार की है नहीं। ज्यों-ज्यों योगी अलग भूमिकाओं में प्रवेश करने लगेगा त्यों-त्यों ही उसका मन सिद्धिभाजन बनता चला जायेगा। बहुत सी सभाओं में हमने लोगों को सिद्धियों की निन्दा करते देखा है। उन

लोगों का कहना होता है कि मनुष्य को सिद्धियों के चक्र में नहीं पड़ना चाहिये। जो लोग सिद्धियों के अभ्यास में लगे रहते हैं वे लोग अपने समाधि मार्ग से पीछे हट जाया करते हैं। यह बात इसी दशा में कही जा सकती है जबकि मनुष्य शास्त्रोक्त सिद्धान्तों को न समझता हो। शास्त्र–ज्ञाता पुरुष कोई भी इतनी बड़ी भूल की बात अपनी वाणी में नहीं कहेगा। उपरोक्त सिद्धान्त को सामने रखने वाला व्यक्ति संसार में बिल्कुल अकर्मण्य रहेगा क्योंकि उसको हर समय यह भय रहेगा कि जब भी शरीर में किसी प्रकार का बल होगा या किसी सिद्धि–शक्ति का उदय होगा उससे लोगों के अनिष्ट होने का भय बना रहेगा या साधक मान–अपमान के झमेले में पड़ सकता है। धीर पुरुषों को कभी–कभी इस प्रकार के कायरता वाले संस्कारों को अपने मन में उठने नहीं देना चाहिये। एक पहलवान खाता है, पीता है, हजारों प्रकार के व्यायाम करता है, उसके शरीर में अतुल बल बढ़ता है। कदाचित् वह पहलवान अपने मन के अन्दर यह विचार करे कि शरीर में बल बढ़ाना उपयुक्त नहीं है क्योंकि बल हो जाने पर जिसको चाहे दण्ड दिया जा सकता है, मारा पीटा जा सकता है। इसलिए अच्छा यही है, कहीं इस बात से किसी का अनिष्ट न हो जाये, अतः बल रहित ही बना रहना चाहिए। यह कायरों का सिद्धान्त है। आज से लगभग 80–100 वर्ष पहले कुछ साधुओं ने इस प्रकार के सिद्धान्त की कल्पना की थी कि इस प्रकार के भावों का प्रचार किया जाये कि जो पढ़ेगा वह भी समय आने पर मर ही जायेगा और जो अनपढ़ मूर्ख रहेगा वह भी समय आने पर मर ही जायेगा, इसलिए व्यर्थ शास्त्र के अभ्यास के अन्दर इतना लम्बा समय क्यों खराब किया जाये। आलसी और उत्साह रहित लोगों के इन विचारों ने समाज का बड़ा अनिष्ट किया और उनके पग–पग चमकने वाले उज्जल जीवन को मृतमय बना दिया। अतः सिद्धि मनुष्य का बल है। और जो व्यक्ति बलहीन है उसको कभी भी आत्मपद की प्राप्ति नहीं होती। मनुष्य को ''येन केन उपायेन'' अपने अन्दर शक्ति का विकास करना चाहिये एवं सिद्धि शक्तिवान् होना चाहिये। किंतु जिस प्रकार एक स्वस्थ एवं बलिष्ठ मनुष्य शरीर के बल होने पर एवं हाथ में कृपाण रहने पर भी वह किसी को मारता–काटता नहीं फिरता किंतु ठीक समय के सदुपयोग के लिए अपनी उस ताकत को सम्भाले रहा करता है, जो समय आने पर उसकी सहायक हुआ करती है। समय के आधार पर मनुष्य जिस–जिस प्रकार से सिद्धियाँ प्राप्त करता है, उसका वर्णन इसी लेख में आगे चलकर करेंगे उससे पहले अन्याय साधनों से जो शास्त्र सम्मत जो सिद्धियाँ उपलब्ध हुआ करती हैं उसका थोड़ा सा वर्णन कर देना उपयुक्त समझते हैं। योग दर्शन में कैवल्य पाद के प्रथम सूत्र में भगवान पतंजलिदेव ने विविध उपायों से होने वाली सिद्धियों का वर्णन किया है।

जन्मौषधिमन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धयः।

अर्थात कुछ सिद्धियाँ प्राणी को जन्म के साथ उपलब्ध हुआ करती हैं। कुछ सिद्धियाँ औषधियों से एवं कुछ सिद्धियाँ मंत्र, तप एवं समाधि के द्वारा प्राप्त हुआ करती हैं। इस सूत्र पर भाष्य करते हुए भगवान व्यासदेवजी निम्नांकित पंक्तियां लिखते हैं–

देहान्तरिता जन्मना सिद्धिः औषधिभिर सुरभवनेषु रसायनेत्येवमादि

मन्त्रैराकाशगमनाणिमादि लाभः तपसा संकल्पसिद्धिः कामरूपी यत्र तत्र कामगइत्येवमादि समाधिजाःसिद्धयो व्याख्याताः।।

जन्मजासिद्धि

अर्थात् देहान्तरिता जन्मजा सिद्धि का अर्थ है पूर्व जन्म के अर्जित पुण्य के प्रभाव से इस जन्म में सांसिद्धिक ज्ञान का हो जाना, जैसे भगवान कपिलदेव आदि को हुआ। इस सिद्धि का संकेत समाधि पाद के 19 वें सूत्र में भगवान पतंजलिदेव ने किया है:-

भवप्रत्ययो विदेह प्रकृतिलयानाम्।

अर्थात् **विदेहानाम् प्रकृतिलयानाम च योगिनाम भव प्रत्ययो भवति।** अर्थात् जो लोग देवलोक से आकर जन्म लेते हैं और प्रकृतिलीन योगी जिनको अपने साधन में अपूर्णता के कारण संसार में पुनः जन्म लेना पड़ता है इनको जन्म से ही पौर्व दैहिक ज्ञान की प्रतीति हो जाया करती है। इस विषय का पूरा-पूरा संकेत अखिल लोक पावन विश्वात्मा भगवान श्री कृष्णचंद ने गीता के छटे अध्याय में इस प्रकार से किया है। अर्जुन ने भगवान श्री कृष्ण से प्रश्न किया:-

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलित मानसः।
अप्राप्य योग संसिद्धि कां गतिं कृष्ण गच्छति।।
कच्चिन्नोभय विभ्रष्टश्छिन्ना भ्रमिव नश्यति।
अप्रतिष्ठो महावाहो विमूढ़ो ब्रह्मणः पथि।।
एतन्मे संशय कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषत्।
त्वदन्य संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते।।

अर्थात जो व्यक्ति श्रद्धा युक्त है और जो साधना की पूर्णता के बिना ही प्रमादवश जिसका मन विचलित हो चुका है वह योग संसिद्धि को न पाकर किस गति को प्राप्त होता है। कहीं ऐसा तो नहीं होता जैसे आकाश में फूटे हुए बादलों के समान वह ब्रह्म मार्ग से भ्रष्ट हो जाया करता है। इसलिए हे श्री कृष्ण आप कृपा करके मेरे इस संशय का नाश करें। भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को इस प्रश्न का उत्तर निम्नलिखित श्लोकों में इस प्रकार दिया:-

पार्थनैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
नहि कल्याण कृत्कश्चिद् दुर्गतिंतात गच्छति।।
प्राप्य पुण्यकृतां लोका-नुषित्वाशाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।।
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम।।
तत्र तं बुद्धि संयोग लभते पौर्व देहिकम।

यतते च ततो भूय संसिद्धौ कुरुनन्दन।।

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपिस:।

जिज्ञासुरपि योगस्य शब्द ब्रह्मातिवर्तते।।

अर्थात् भगवान श्री कृष्णजी ने उत्तर दिया कि हे अर्जुन ऐसे व्यक्ति का इस लोक और परलोक में कभी भी नाश नहीं होता। कल्याण मार्ग पर चलने वाला कोई भी व्यक्ति दुर्गति को प्राप्त नहीं होता जिसने इतनी तीव्रतम साधना की है और किसी अन्तराय से वह परम श्रेय भागी नहीं बन सका तो भी वह पुण्यात्माओं के पवित्र लोक में पवित्र धनवानों के घर में अथवा योगियों के ही घरों में जन्म ले लिया करते हैं। इस प्रकार का जन्म भी इस मनुष्य लोक में अत्यन्त दुर्लभ है। मनुष्य लोक में इस प्रकार का जन्म प्राप्त कर लेने के बाद वहां पर उसकी पुन: पौर्वदेहिक बुद्धि संयोग प्राप्त हो जाया करता है जिसको प्राप्त करके वह साधक अपनी साधना को पूर्ण करने के लिए पुन: प्रयत्न करता है और उसका वह पूर्व जन्म में किया हुआ अभ्यास है। वह पूरी–पूरी प्रेरणा देकर इसी अभ्यास में संयुक्त कर देता है विवश होकर के साधक को वह पूर्व अभ्यास करना पड़ता है। इस पवित्र योग का अभ्यासी भी शब्द ब्रह्म के दायरे से (अर्थात् कर्मकाण्ड के दायरे से) अनायास ही ऊपर उठ जाया करता है।

जगदात्मा भगवान श्री कृष्ण का यह संकेत भव प्रत्यय का संकेत है। इसी का भगवान पतंजलिदेव ने देहान्तरिता सिद्धि के रूप में वर्णन किया। क्योंकि ये सिद्धि पूर्व जन्मार्जित है। इसमें योगी को इस जन्म में कोई विशेष अभ्यास करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

एक उदाहरण

हमारे दिल्ली के योग प्रचार कार्यक्रम में जबकि हमरा दिल्ली में प्रो. ऋषिराम की कोठी पर ही योग प्रचार कार्यक्रम चल रहा था उस समय उन्हीं के हिंदू कालेज में अध्ययन करने वाला एक छात्र इस प्रकार का आया जिसने बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में बतलाया कि उसे पौर्व दैहिक बुद्धि संयोग से भगवान विष्णु के चतुर्भुज दर्शन चिन्तनमात्र से हर समय होते रहा करते है। ये उसके देहान्तर में उपार्जित किये हुये पुण्य का फल था। जो इस जन्म में अनायास ही उसके सामने प्रगट रहता था। वैसे इस प्रकार की स्थिति को उपलब्ध करने के लिये सहस्त्रों साधक प्रयत्नशील रहा करते है। वह अभ्यन्तर धारणा के द्वारा भगवान के स्वरूप को हृदयांगम करने के लिए पूरे–पूरे प्रयत्नशील रहा करते हैं। घण्टों लगातार मानस पूजन करते है। तीव्रतम तपश्चर्या एवं स्वाध्यायपूर्वक स्थिति को सम्पादन करने के लिये प्रयत्नशील रहा करते हैं किंतु घोर प्रयत्न करने पर भी इस प्रकार की स्थिति को प्राप्त नहीं कर पाते; किंतु उस विद्यार्थी को पूर्व जन्म के अभ्यास के फलस्वरूप यह स्थिति इस जन्म में जन्म लेने के बाद अनायास ही स्वत: ही प्राप्त थी – यही देहान्तरिता सिद्धि शुद्ध स्वरूप है। कोई–कोई भाष्यकार या अनुभवी साधु जन्म–सिद्धि का स्वरूप दूसरे रूपों से भी बतलाते है जैसे पक्षियों को स्वत: ही आकाश गमन प्राप्त होता है, यह भी उनके इसी पौर्व दैहिक कर्म के ही फलस्वरूप। उनको यह जन्म धारण करके आकाश गमन के लिये प्रयत्न करने की साधना नहीं करनी पड़ी। मछली और

कछुए को स्वत: ही जल में श्वास लेने की शक्ति प्राप्त है। स्थल में रहने वाले जीवों को यह ताकत प्राप्त नहीं होती, वे लोग यदि जल में डूबने का अभ्यास करेंगे तो उनको विशेष प्रकार के अभ्यास करने पड़ेंगे। जिनके फलस्वरूप वे इस ताकत को प्राप्त कर सकेंगे। अत: यह जन्म लेने के बाद स्वभाव से प्राप्त होने वाली सिद्धि का रूपक है। इसके बाद दूसरी कुछ सिद्धियाँ इस प्रकार की हुआ करती हैं जो दिव्य औषधियों से उपलब्ध करते हैं।

औषधिजा सिद्धियाँ

औषधिजा सिद्धि का अर्थ है दिव्य रसायनों के सेवन करने से शरीर के अन्दर जो विशेष प्रकार की शक्ति प्रगट हो जाती है वह औषधिजा सिद्धियाँ कहलाती है। जैसे साधारणतया संसार में देखने में आता है कि पारे की योग की औषधियों के सेवन करने से मनुष्य बड़ी जल्दी दिव्य बल को पा लिया करता है। आम तौर पर शरीर में होने वाले रोगों की चिकित्सा डाक्टर और कुशल वैद्य किया करते हैं और उस रोग की निवृत्ति के लिये उन दिव्य औषधियों का सेवन करा करते हैं। दिव्य औषधियों के सेवन करने से रोगी का रोग नष्ट हो जाता है। और शरीर में स्थाई बल प्राप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त पारद के कुछ और भी इस प्रकार के योग हैं जिनको विधिवत सेवन करने पर मनुष्य आकाश गमन आदि ताकत को प्राप्त करता है। साधारणतया किसी को बुद्धि विकास के उपयोग के लिये वैद्य लोग बाहरी रसायन आदिक सेवन कराया करते हैं। ब्राह्मी बूटी के सेवन करने से मनुष्य को क्या–क्या लाभ पहुँचते हैं वे सभी बातें तो हर व्यक्ति नहीं जानता किंतु इतना ज्ञान सभी को अवश्य है कि ब्राह्मी बूटी को दूध के साथ सेवन करने से मनुष्य की मस्तिष्क शक्ति केन्द्रित होती है और उसको बुद्धिबल मिलता है। इसका बहुत से लोगों को अनुभव है और वे लोग अधिकतर में ब्राह्मी बूटी का सेवन किया करते हैं। भांग, धतूरा या गांजा आदि के सेवन करने से मनुष्य भारी मद को प्राप्त होता है। वह अपने बाह्य बोध से शून्य हो जाया करता है और बुद्धि विवेक से खाली हो जाता है यह उन औषधियों में रहने वाले प्रवाह का परिणाम है। जिसको मनुष्य तत्काल नहीं देख लेता है। हिमालय पर्वत की तराइयों में कुछ इस प्रकार की दिव्य बूटियाँ भी मिलती हैं जिनके प्रयोग से मनुष्य जल्दी ही अपने आपको समाहित कर लेता है किंतु जिस प्रकार से सिद्ध पुरुषों का सहसा हर किसी के लिए जाना सम्भव नहीं होता उसी प्रकार दिव्य औषधियों की प्राप्ति भी हर व्यक्ति को सुलभ नहीं हुआ करती। दिव्य औषधियों का प्राप्त करना उतना ही कठिन है जितना हर व्यक्ति को सिद्धों के दर्शन पा जाना। किंतु जो लोग स्वाध्यायी होते हैं एवं ब्रह्मचर्य व्रत से रहने वाले हैं उनको इस प्रकार की औषधियाँ सुलभ हो जाया करती हैं।

एक उदाहरण

दक्षिण भारत के प्रसिद्ध योगिराज श्री नृसिंह मूर्ति जो मेरे छोटे गुरु भाई हैं। उन्होंने कुछ दिन पहले घटित हुई एक घटना का समाचार मुझे बतलाया, उनके दक्षिण प्रान्त में बड़े–बड़े दिव्य देव मन्दिर हैं जिनको देख करके मनुष्य को आत्म संतोष मिलता है। वहां पर किसी नगर के एक दिव्य मन्दिर में संस्कृत पाठशाला थी और उसके अध्यापक एक उच्च कोटि के विद्वान

थे उनके घर में क्रमशः सात पुत्र उत्पन्न हुए और वो सभी एक से एक ऊँचे विद्वान बने किंतु ज्यों ही वो युवा हुए त्यों ही काल कलवित बन गये। इससे पंडित जी को बड़ा भारी कष्ट हुआ। अतः उन्होंने अपने सातवें बच्चे को बिलकुल मूर्ख रख लिया ताकि विद्वता को पाकर कहीं वह भी काल का ग्रास न बन जाए। वह बच्चा पण्डित के इस प्रयास से जिन्दा तो रह गया किन्तु अत्यन्त मूर्ख था। पंडित जी इसी चिन्ता के अन्दर रहा करते थे किंतु स्वाध्यायशील व्यक्ति थे। स्वाध्यायशील व्यक्ति कभी खाली नहीं रहता। योगदर्शन हमें बतलाता है–

स्वाध्यायायादिदेवता सम्प्रयोगः।

अर्थात स्वाध्यायशील व्यक्ति को इष्टदेव की कृपा अवश्य प्राप्त होती है। और उसके साथ–साथ इस सूत्र का भगवान व्यासदेव जी भाष्य करते हैं:–

देवा ऋषयः सिद्धाश्च स्वाध्यायशीलस्य दर्शनं गच्छन्ति कार्येचास्य वर्त्तन्ते इति।

अर्थात देवता, ऋषि और सिद्ध लोग स्वाध्यायशील व्यक्तियों के सामने जाया करते हैं और उसके काम कर दिया करते हैं। पंडित जी के तप और स्वाध्याय के फलस्वरूप कुछ समय व्यतीत हो जाने के बाद उनके घर में एक महात्मा आकर ठहरे, उन्होंने पंडित जी के उस पुत्र को मूर्ख देखा और उनके ह्रदय में बड़ा भारी दुख हुआ और उनको दया आ गई। उनके पास विद्युल्लता नाम की दिव्य औषधि थी जिसके सेवन कराने से बच्चे का विद्वान हो जाना स्वाभाविक था। महात्माजी ने उस बच्चे को अपने पास बुला लिया और उसको विद्युल्लता नाम दिव्य औषधि का सेवन पवित्र गौ दूध से करा दिया जिसके सेवन करने से वह बच्चा थोड़े दिन में ही अपने पिता के पढ़ाये हुए पाठ को सुनने मात्र से ही धारण कर लिया और वह अपने बुद्धि कौशल से पूर्ण विद्वान बन गया। एक रोज उसके पिता कहीं अन्यत्र गये हुए थे। उनके बाद उसने पाठशाला जाकर विद्यार्थियों को शिक्षा देनी आरम्भ की। इतने में उसके पिता आ गये और इस बात को देखकर उनको भी बड़ा आश्चर्य हुआ कि मेरा यह बच्चा जो मैंने मूर्ख रख दिया था, इतना विद्वान कैसे बन गया? बच्चे से सब बातें उसके पिता ने पूछी। उस बच्चे ने सत्य व स्पष्ट बतला दिया कि घर में अतिथि रूप में आये हुए महात्मा जी ने विद्युल्लता नाम की दिव्य औषधि का सेवन कराया है। जिससे उसका इतना बड़ा बुद्धि विकास हो गया है जिसके फलस्वरूप वह सुनने मात्र से ही इतना बड़ा विद्वान हो गया है। यह धन औषधि विद्युल्लता का प्रभाव था। इसी प्रकार की और भी कई एक दिव्य औषधियाँ अनुभवी महात्माओं को मिलती हैं। मेरे गुरु देव जी स्वयं अपने मुखारबिन्द से चान्द्रायण बूटी नाम की एक बूटी का अपने मुख से वर्णन किया करते थे। श्री प्रभु जी अपने मुखार बिन्द से कहा करते थे कि चान्द्रायण बूटी को सेवन करने से मनुष्य को अनायास ही समाधि प्रज्ञा प्राप्त हो जाती है। वनों में रहने वाले साधु पर्याप्त तपश्चर्या के बाद इस बूटी को प्राप्त किया करते हैं। सुनते हैं चान्द्रायण बूटी की जड़ में एक भयंकर नाग हर समय निवास किया करता है। जो लोग इस बूटी को उखाड़ना चाहते हैं वे लोग धीरे–धीरे जा करके इस बूटी को रेशम के धागे से सख्त बांध कर चले आया करते हैं। कदाचित सर्प के वार से वह लोग बच जायें तो इस बूटी को घोट कर पी लेने मात्र से उनका

चित्त समाहित हो जाया करता है और तत्काल ही उनको दिव्यानुभूति प्रारम्भ हो जाया करती है। फिर शनैः शनैः समाधि प्रज्ञा निर्मल होती रहती है और ये लोग भी समाधि को प्राप्त हो जाते है। अतः औषधियों से भी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। यह अवश्य सम्भावी बात है।

मन्त्रजा सिद्धियाँ

मन्त्रजा सिद्धियों के विषय में साधनपाद के 44वें सूत्र में स्पष्ट रूप से बता दिया गया है कि मन्त्र में जप करने से मनुष्य इतनी बड़ी ताकत को प्राप्त कर सकता है। भगवान पतंजलिदेव बतलाते है:-

स्वाध्यायादिष्टदेवता सम्प्रयोगः।

भगवान व्यासदेवजी भाष्य करते हुए लिखे हैं:-

देवा, ऋषयः, सिद्धश्च, स्वाध्यायशीलस्य दर्शनं गच्छति कार्यचास्य वर्तन्ते।

अर्थात मनुष्य का स्वाध्याय बल बढ़ जाने के बाद ऋषि, देवता और सिद्ध लोग उसको दर्शन दिया करते हैं और अपने मन की ताकत से उसके सब काम कर दिया करते है। यही स्वाध्याय पराकाष्ठा को प्राप्त हुआ मनुष्य को समाधि तक पहुँचाने का कारण बन जाता है। जब मनुष्य मंत्र के बल से समाधि योग को प्राप्त होता है तो वह समाधि सिद्धियों का भाजन स्वयं बन जाता है। जो व्यक्ति किसी भी मंत्र का अनवरत जप करता रहता है उसके मन में एक विशेष प्रकार की ताकत इष्टदेव की ताकत एवं सिद्धों की ताकत साधक को प्राप्त होती है। उसका परिणाम यह निकलता है जो व्यक्ति स्वाध्याय के बल से मंत्रों को सिद्ध कर लेते है वे लोग कभी भी किसी भी आपत्ति के समय में जब उस मंत्र को स्मरण करते हैं तभी उसको पूर्ण रूपेण मनोबल प्राप्त होता है और उनका अनिष्ट बिल्कुल दूर हो जाया करता है। आम तौर पर हमारे शास्त्रों में मंत्रानुष्ठान करने की विधियाँ लिखी है। शास्त्रोक्त विधि के अनुसार जो व्यक्ति मंत्रानुष्ठान करते हैं उनको अवश्य ही गुरुदेव का दर्शन होता है।

अनुष्ठान की साधारण विधि

अनुष्ठान करने की विधियों में हमारे आचार्य मंत्र का कुछ भाग यज्ञ के लिये, कुछ ब्राह्मण भोजन दान-दक्षिणा आदि के लिए उपयोग करते हैं। बल्कि उसके अतिरिक्त जो व्यक्ति इस लम्बे-चौड़े झमेले में नहीं पड़ना चाहते उनको चाहिए कि जिस मंत्र का वे लोग जप करते है उस मंत्र में जितने अक्षर हुआ करते हैं और उनकी कृपा से उसको अपने मनोरथ प्राप्त होते हैं किंतु वही अनुष्ठान निष्काम भाव से किया हुआ मनुष्य को समाधि द्वार तक पहुँचा देता है। स्वाध्याय क्लेशों के तन्वीयकरण के लिए एवं समाधि की पुष्टि के लिए हुआ करता है। योग दर्शन में भगवान पतंजलिदेव ने-"तपः **स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रिया योगः**" कह करके क्रिया योग के तीन स्तम्भ बतलाये हैं - तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान और इन तीनों का फल निर्देश करते हुए यह सूत्र लिखा है:-

समाधि भावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च

अर्थात ये तप स्वाध्याय और प्रणिधान क्रिया योग के तीनों अंग समाधि की पुष्टि के लिए एवं क्लेशों के हल्का बनाने के लिये है अत: निष्काम भाव से किया हुआ स्वाध्याय भी समाधि का जनक है। मंत्रानुष्ठान की अन्यान्य विधियों का आश्रय लेने से व्यक्ति विविध प्रकार की मंत्र शक्तियों को पा जाते हैं। सर्प विष के उतारने के मंत्र, बिच्छू के विष को उतारने के मंत्र मानस रोग निवारण करने के मंत्र आदि आदि जितने मंत्र संसार में प्रचारित हैं, वे सब के सब मंत्रजासिद्धि के अंगभूत हैं। मंत्र बल से जो शक्ति मिले वह मंत्रजा कहलाती है।

तपोजा सिद्धियाँ

कुछ सिद्धियाँ तप के द्वारा मनुष्य को प्राप्त हुआ करती है। वे सिद्धियां तपोजा सिद्धियाँ कहलाती हैं। भगवान पतंजलिदेव जी लिखते हैं–

कायेन्द्रियसिद्धिर शुद्धिक्षयात्तपस:।।

भगवान व्यासदेव भाष्य करते हुए लिखते हैं:–

निर्वर्त्यमानमेव तपो हिनस्त्यशुद्धयावरणमल तदावरणमलापगमात कायसिद्धि:=अणिमाद्या, तथेन्द्रिय सिद्धि:= दूराच्छ्रवणदर्शनाद्येति।।

अर्थात तप के द्वारा अशुद्धि के आवरण रूप मल के क्षय हो जाने पर मनुष्य को कायक सिद्धि, अणिमादिक और कायक सिद्धि, दूर–श्रवण और दूर दर्शन आदि स्वभावत: प्राप्त हो जाया करती है। तप का अर्थ है:– द्वन्द्व सहनम् तप:। अर्थात् सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास आदि के जोड़े को सहन करना तप कहलाता है और योग में प्राणायाम से बढ़ करके अन्य किसी तप को कोई महत्व नहीं दिया है। तप के द्वारा मनुष्य को उत्तरोत्तर अशुद्धि के नाश होने से सिद्धिएं आदि और एन्द्रिय सिद्धियाँ दूर–श्रवण, दूर दर्शन आदि प्राप्त हुआ करती हैं। इसका कारण केवल मात्र इतना ही है कि तप से अशुद्धि का नाश होता है और अशुद्धि नाश होने से रज और तप का आवरण नष्ट हो जाता है। योगाचार्यों के संविधान में प्राणायाम से बढ़कर और किसी तप का महत्व नहीं है।

मनु जी महाराज मनुस्मृति में बतलाते हैं:– जिस प्रकार सोना चांदी आदि धातुओं को पकाने से उनके मल जल जाते हैं उसी प्रकार से प्राणायाम के द्वारा इन्द्रियों के मल जल जाते हैं और इन्द्रियों के मल जल जाने से दूर दर्शन, दूर श्रवण आदि एन्द्रिय सिद्धि मनुष्य को स्वभावत: प्राप्त हो जाया करती है।

मनु जी महाराज के उपरोक्त श्लोक के द्वारा एवं भगवान पतंजलि देव के बतलाये हुए–

कायेन्द्रियसिद्धिर शुद्धक्षयात्तपस:

इस सूत्र के द्वारा इस निश्चित सिद्धान्त की पुष्टि की गई कि मनुष्य तप के बल से कायिक एवं इन्द्रियों की सिद्धि प्राप्त कर सकता है।

प्राणायाम के द्वारा कायिक एवं एन्द्रिय सिद्धि वाले एक साधक का उदाहरण

हमारे आश्रम के एक अभ्यासी साधक ने एक एकान्त स्थान में रहकर प्राणायाम का अभ्यास शुरू किया। शनैः शनैः अभ्यास बढ़ाने के बाद वह 20 प्राणायाम प्रातः, 20 प्राणायाम दुपहर, 20 प्राणायाम सायंकाल, 20 प्राणायाम अर्द्ध रात्रि शास्त्र विधि के अनुसार अभ्यास करने लगा। शनैः शनैः वह प्राणायाम के अभ्यास की गयी मात्रा को बढ़ाता गया। अभ्यास बढ़ जाने के बाद उसके समीपस्थ लोगों ने प्राणायाम के बल से प्राप्त होने वाली कायिक एवं एन्द्रिय सिद्धियों को उस समय पर अनुभव किया। एक बार वह प्राणायाम के अभ्यास से कहीं पहाड़ी स्थान में बैठा हुआ था। प्राणायाम के बल से उसके हृदय में प्रकाशावरण क्षय हो चुका था। बुद्धि अन्तर जगत में लीन थी। इतनी देर में उसके सामने पहाड़ी भ्रमण के लिए आया हुआ एक डाक्टर पहुँचा। डाक्टर घूमता हुआ सामने से निकल गया वह डाक्टर अमृतसर का रहने वाला था। अचानक उस प्राणायाम के अभ्यासी योगी की दृष्टि उस डाक्टर पर पड़ी। डाक्टर की शक्ल को देखकर वह उसके मकान की ओर गया। ज्यों ही योगी के मन में उसके मकान का चिन्तन किंचित् आरम्भ हुआ त्यों ही दूरदर्शन एन्द्रिय सिद्धि से उसने देखा कि उसके तिमंजिले मकान से उसके दो बच्चे परस्पर लड़ते–झगड़ते नीचे गिर गये हैं। प्राणायाम अभ्यासी योगी ने अपने एक साधक की ओर संकेत करके उस भ्रमणार्थ आये हुए डाक्टर को अपने पास बुला लिया और पास आने पर उसने कहा क्यों क्या तुम डाक्टर हो? डाक्टर ने जवाब दिया हाँ महाराज मैं डाक्टर हूँ। क्या तुम अमृतसर के रहने वाले हो। डाक्टर ने कहा हाँ जी महाराज अमृतसर का रहने वाला हूँ। डाक्टर के ऐसा कह देने के बाद उस योगाभ्यासी नवयुवक ने डाक्टर से कहा कि तुम्हारे दो बच्चे अभी लड़ते हुए तुम्हारे तिमंजले मकान से नीचे गिर गये हैं। तुम्हारा छोटा भाई तुम्हें टेलीफोन करने के लिए घर से चल पड़ा है। तुम सीधे डाकखाने चले जाओ, तुम्हारा टेलीफोन आने वाला है। अपने भाई से बच्चे का समाचार सुनकर तुम अपने घर अमृतसर लौट जाना, किंतु तुम किसी बात की चिन्ता मत करो तुम्हारे बच्चों पर हमारी दृष्टि पड़ गई है, उनका बाल बांका नहीं होगा। तुम जब घर पहुँचोगे वे सब प्रकार से प्रसन्न मिलेंगे। योगी ने दूरदर्शन के द्वारा उस बच्चे के कुल समाचार बतला दिये और उस डाक्टर ने अपने घर जाकर देखा तो उस योगी की बताई गई हुई सब बातें यथार्थ निकली। तीन दिन के बाद डाक्टर ने पुनः योगी के दर्शन प्राप्त किये और घटना को यथार्थ बतलाया। इसी प्रकार से इस युवक के अभ्यास काल में उसके सत्संग में रहने वाले लोगों ने इसकी अन्तर्ध्यान क्रिया को देखा और कई इसी प्रकार की घटनायें घटित हुई।

समाधिजा सिद्धियाँ

इस लेख के ऊपर के भाग में जप औषधि मंत्र एवं तप से होने वाली सिद्धियों का वर्णन किया जा चुका है। पाँचवीं प्रकार की सिद्धियाँ समाधि से उपलब्ध होने वाली होती हैं। हम अपने पिछले लेखों में समाधि की परिभाषा भली प्रकार समझा चुके हैं। भगवान पतंजलिदेव ने समाधि की पतन रहित स्थित को संयम कहा है। वस्तुतः संयम ही सिद्धियों का जनक है। संयम की

परिभाषा भगवान पतंजलिदेव ने "**त्रेमेकत्र संयमः।**" कहकर प्रचारित की है। त्रयमेकत्र संयम का अर्थ है धारणा, ध्यान और समाधि तीनों एक विषयक ही हों। अर्थात् जिस अवस्था पर धारणा का अभ्यास किया जाये, धारणा–काल में मन उसी में लगा रहे और तदन्तर धारणा के धारा प्रवाहिक अभ्यास के बाद वह धारणा ही सदृश प्रवाह के रूप में बदल कर ध्यान के रूप में प्रस्फुटित हो जाये और इसी प्रकार दीर्घ काल नैरन्तर्य एवं आदरपूर्वक किये हुए अभ्यास के बल से वह ध्यान ही तदाकार रूप धारण कर समाधि को प्राप्त हो जाये। जब साधक का अभ्यास इतना परिपक्व हो जाता है कि उसका मन धारणा काल में, ध्यान काल एवं समाधि काल में भी अनवरत एक विषयक ही बना रहता है, समाधि की इस प्रकार की स्थिति को संयम कहते हैं और ये संयम ही भिन्न–भिन्न भूमियों में लगाने पर समाधि का जनक हो जाया करता है। भगवान पतंजलिदेव ने संयम पर विजय प्राप्त कर लेने पर उसका क्या परिणाम रहता है यह स्पष्ट शब्दों में निर्देश किया है –

तज्जयात् प्रज्ञाऽऽलोकः

इसका अर्थ स्पष्ट करते हुये भगवान व्यासदेव जी ने निम्नांकित पंक्ति में लिखा है:–

तस्य संयमस्य जयात्समाधि प्रज्ञाया भवत्यालोकः यथा यथा संयमः स्थिरपदो भवति तथा–तथा समाधि प्रज्ञा विशारदी भवति।।

अर्थात संयम की परिपक्व स्थिति आ जाने पर साधक की समाधि प्रज्ञा बिल्कुल निर्मल हो जाती है। तभी उसका रूप ज्ञान एवं विज्ञान पर पार पा जाने वाला बन जाता है।

□□□

"जो वेदों का सार समझते हैं, जो निष्पाप हैं, जो धन के लोभ से और किसी प्रकार के स्वार्थ से लोगों को शिक्षा नहीं देते, जिनकी कृपा हेतु विशेष से नहीं प्राप्त होती, वसंत ऋतु जिस प्रकार पेड़–पौधों और लता–गुल्मों से बदले में कुछ न चाहते हुए सभी पेड़–पौधों में नया जीवन डालकर उन्हें हरा–भरा कर देती है, उनमें नयी–नयी कोंपलें निकल आती हैं, उसी प्रकार जिनका स्वभाव ही लोगों के हित के लिए है, जो इसके बदले लोगों से कुछ भी नहीं चाहते, ऐसे महान व्यक्ति ही गुरु कहलाने योग्य हैं; दूसरे नहीं।"

– स्वामी विवेकानन्द

● सम्पादकीय

सिद्धयोग–हमारी प्यारी पत्रिका

प्रिय पाठवृन्द/भाई–बहिन,

जयगुरुदेव की!

क्षण–क्षण स्मरणीय गुरुदेव योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज के संकल्प से प्रकट कल्पवृक्ष के रूप में हमारी पत्रिका '**सिद्धयोग**' अपनी आयु के 40 वर्ष पूरा करके अप्रैल विशेषांक के साथ ही 41 वें वर्ष में प्रवेश पा रही है। श्री गुरुदेव भगवान ने इस पावन वृक्ष का आरोपण सन् 1968 में किया था, जिसका एकमात्र लक्ष्य था कि योग जिज्ञासु इसके माध्यम से योग तत्व व सिद्धान्त को समझ लें जिससे योग मार्ग पर चलकर आध्यात्मिक उन्नति के चरम लक्ष्य की ओर वे चल सकें। आज के इस विकासशील युग में भौतिक उन्नति के साथ–साथ धार्मिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में भी जागरूकता आ गई है। इसी क्रम में धार्मिक व आध्यात्मिक पत्र–पत्रिकाओं का भी समाज में व्यापक प्रचार कार्य चल रहा है। किन्तु 'सिद्धयोग' जिस प्रकार से योग के सैद्धांतिक दुरूह व दुर्बोध्य पक्ष को अत्यन्त सरल भाषा में बोधगम्य बना देती है, ऐसा दूसरी पत्रिकाओं में देखने को नहीं मिलता।

'सिद्धयोग' गुरुदेव से सम्पर्क बनाये रखने का सक्षम माध्यम है। साधक घर बैठे ही गुरुदेव के उपदेश एवं आज्ञाओं का संकेत पा जाया करते हैं। पत्रिका के माध्यम से श्री गुरुदेव की आत्मिक शक्ति का संचार शिष्यों में होता रहता है। साधकों के मन में उठने वाले संशयों का निवारण भी इससे हो जाता है।

वेदान्त प्रक्रिया में आत्म दर्शन की ओर चलने के साधन के रूप में तीन अंगों का वर्णन किया गया है। वेदान्त का सिद्धान्त है– **आत्मा व अरेद्रष्टव्यः, श्रोतव्यः मन्तव्यः निदिध्यासित्तव्यः।** अर्थात आत्मा का दर्शन करना चाहिये। इसके लिए सर्वप्रथम श्री गुरुदेव के मुख से आत्म तत्व के विषय में श्रवण करना चाहिये। श्रवण करने के पश्चात मनन करना चाहिये। ठीक प्रकार से मनन हो जाने पर निदिध्यासन में बैठना चाहिये। निदिध्यासन ही योग की भाषा में ध्यान–योग का अभ्यास कहलाता है। श्री गुरुदेव जब शिष्य को उपदेश करते हैं तो शब्द के माध्यम से शिष्य पर शक्ति संचार होता है। योग के ग्रन्थों में शक्तिपात के अनेक प्रकार की दीक्षाओं का वर्णन मिलता है। इनमें संकल्प दीक्षा, स्पर्श दीक्षा, दृग दीक्षा, हार्द दीक्षा आदि दीक्षाओं का वर्णन है। गुरुदेव दीक्षा दान के समय गुरुमन्त्र के माध्यम से शिष्य के दाहिने कर्ण में शक्ति का संचार करते हैं। आनन्दकन्द श्री गुरुदेव भगवान ने 'सिद्धयोग' परम्परा को अक्षुण्ण रखा है। सिद्धयोग के पठन से कोई भी योग जिज्ञासु योग की परिभाषा, स्वरूप, विधि एवं लक्ष्य समझ सकता है। श्रद्धालु साधकों में सिद्धयोग के माध्यम से ही गुरुदेव के दर्शन एवं कृपालाभ

होते देखा गया है। जीवन से परेशान कई व्यक्तियों को सन्मार्ग मिला और जीवन की धारा ही बदल गई। पत्रिका के पठन–पाठन एवं अनुशीलन से उत्साह, उल्लास एवं मार्ग दर्शन मिलता है। योग शास्त्र अत्यन्त गहन है, इसके दुरूह विषयों को समझना बहुत कठिन है, किन्तु सिद्धयोग ने इसे अत्यन्त सरल एवं सुबोध्य बनाया है। पत्रिका का अध्ययन साधक के अन्दर श्रद्धा का बीज बो देता है। जिसे योग साधना की नींव माना गया है। जिसमें सम्यक् श्रद्धा नहीं है, वह विनष्ट हो जाता है। भगवान के गीता में वचन हैं– '**संशयात्मा विनश्यति**' अर्थात संशय युक्त व्यक्ति पथभ्रष्ट होकर पतन की ओर चला जाता है। इसलिये 'सिद्धयोग' श्रद्धा एवं स्वाध्याय का अचूक साधन है। साधक को स्वाध्याय में प्रमाद नहीं करना चाहिये। गुरुदेव अपने शिष्यों को उपदेश करते हुए कहते हैं कि – '**स्वाध्यायाद् मा प्रमदितव्यम्**' अर्थात स्वाध्याय में कदापि प्रमाद नहीं करना चाहिये। गुरुमन्त्र का जाप भी उत्तम श्रेणी का स्वाध्याय है, इसमें प्रमाद या लापरवाही नहीं करनी चाहिये। अस्तु।

पत्रिका के लिए, गुरुदेव के समय से ही, किसी प्रकार की विज्ञापन आदि सामग्री प्रकाशनार्थ स्वीकार कर वित्तीय आय जुटाने अथवा सहायता प्राप्त करने का उद्देश्य नहीं रहा है, वह आज भी यथावत् है। 25–30 हजार रुपये का वार्षिक घाटा सहन करके भी पत्रिका अबाध गति से प्रकाशित हो रही है, यह सब पूज्य गुरुदेव जी की कृपा का ही फल है। उदारमना गुरुभाई–बहिनों के आर्थिक सहयोग से घाटे की पूर्ति हो जाती है।

अन्त में मैं उन सभी मनीषी विद्वान लेखकों एवं रचनाकार कवियों के प्रति आभार प्रकट करना अपना कर्तव्य समझता हूँ, जिनके उत्कृष्ट योगपरक लेख एवं सारगर्भित रचनाओं से पत्रिका की महत्ता व शोभा बनी हुई है। मैं उनसे इसी प्रकार अपनी रचनायें, लेखादि निरन्तर भेजते रहकर स्नेह भाव बनाये रखने का नम्र अनुरोध करता हूँ। पत्रिका के पाठकों व ग्राहकों से भी निवेदन करूँगा कि वे नियमित ग्राहक बने रहें तथा कम से कम 5 नये सदस्य अवश्य जोड़ें। इस दिशा में गंगापुर मंडल, कानपुर मंडल व सहारनपुर मंडल के साधकों का प्रयास वस्तुतः स्तुत्य है। इस अंक के साथ ही वार्षिक ग्राहकों का शुल्क समाप्त हो रहा है, अतः समय पर आगामी वर्ष के लिए शुल्क 130/– भेज दें।

आप सभी के लिए आने वाला वर्ष मंगलमय हो। आनन्दकन्द श्री प्रभुजी का परम पावन प्राकट्य दिवस श्री रामनवमी योग महोत्सव के रूप में सवाँई आश्रम, आगरा में 12, 13 व 14 अप्रैल को बड़े हर्षोल्लास व धूमधाम से मनाया जायेगा, सभी श्रद्धालु भक्त उसमें सम्मिलित होकर श्री प्रभुजी की कृपा कोर को पाकर जीवन को धन्य बना लें। इस अवसर पर श्री प्रभुजी के चरणों में सभी भक्तों का कोटि–कोटि नमन है।

आपका

डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

आत्मा क्या है ?

डा. जे. पी. शर्मा, पौंटा साहिब (हि. प्र.)

"आत्मा मरती नहीं, मर मर जात शरीर।" अर्थात आत्मा मरती नहीं है केवल शरीर की ही मृत्यु होती है। आत्मा तो केवल शरीर बदलती है। यथा–

जिमि तजि जीरन बसन नर, धारे नव परिधान।
तिमि जीरन तन जीव तजि, नव तन धरे सुजान॥

अर्थात्-जैसे मनुष्य पुराने कपड़े उतार कर नये कपड़े पहनता है उसी प्रकार आत्मा अपने पुराने शरीर को छोड़ कर नया शरीर धारणा कर लेती है। अत: आत्मा जिस शरीर को छोड़ती है उसे मृत्यु कहा जाता है तथा जिस नये शरीर को धारणा करती है उसे जन्म कहते हैं।

आत्मा न स्त्री है, न ही पुरुष है और न ही उभयलिङ्ग है। जिस शरीर में प्रवेश करती है उसी लिङ्ग की कहलाती है। यथा–

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसक:।
यच्छरीर मादन्ते तेन तेन से युज्यते॥

प्राणीमात्र में प्रवेश करने पर प्राणी की आत्मा कहलाती है। पशु शरीर में प्रवेश मिलने पर पशु आत्मा कहलाती है। सर्प शरीर में प्रवेश होकर सर्प की आत्मा बन जाती है। उसी प्रकार स्त्री में प्रवेश पाने पर स्त्री लिङ्ग बन जाया करती है। जिनके लिङ्ग न स्त्री है और न पुरुष है उन्हे उभय लिङ्गी आत्मा कहा जाता है। अत: आत्मा का अपना निश्चित लिङ्ग नहीं होता है। भगवान कृष्णचन्द महाराज ने गीता में कहा है–

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावक:।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुत:॥

अर्थात इस आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, आग इसे जला नहीं सकती, जल इसे गीला नहीं कर सकता तथा हवा आत्मा को सुखा नहीं सकती।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्य: सर्वगत: स्थाणुरचलोऽयं सनातन:॥

क्योंकि यह आत्मा अच्छेद्य है। आत्मा अदाह्य है, अक्लेद्य और निःसंदेह अशोष्य है तथा यह आत्मा नित्य सर्वव्यापी स्थिर रहने वाला और सनातन है।

यह आत्मा अव्यक्त, अचिन्त्य और विकार रहित है। अत: जीवात्मा नाश रहित, अप्रमेय, नित्य स्वरूप है तथा इसे धारण करने वाले शरीर नाशवान है। आत्मा की अपनी स्वतंत्र सत्ता है। शरीर से इसका अल्प काल तक सम्बन्ध रहता है। शरीर में चैतन्यता आत्मा से ही रहती है।

आत्मा का शरीर से विच्छेद ही मृत्यु है। शरीर से जीवात्मा के निकलने से शरीर शव बन जाता है जिसका कोई महत्व नहीं है। जब तक आत्मा शरीर में विराजमान है तब तक शरीर क्रियाशील गतिशील है तथा सबके साथ सम्बन्ध बने रहते हैं। भाव है कि आत्मा का शरीर से ही सम्बन्ध है तथा अन्य सम्बन्ध गौण हो जाते हैं। वास्तव में, जब हम कहते हैं कि मैं ही इस कार्य को कर रहा हूँ। अतः मैं शब्द ही आत्मा का बोध करा रहा है मैं आत्मा को ही कहा जाता है। आत्मा कहाँ से आती है और कहाँ चली जाती है।

''नासतो विद्यते भाव:''

अर्थात असत की उत्पत्ति हो ही नहीं सकती और सत का अभाव नहीं है। अगर आत्मा उत्पन्न ही नहीं हुई तो मानना ही पड़ेगा कि वह आत्मा मर भी नहीं सकती क्योंकि ''नाभाव: विद्यते सत:'' अत: जो सत है उसका अभाव नहीं हो सकता। मर तो सभी जाते हैं फिर आत्मा का अभाव क्यों न जाना जाय? अत: सत का अभाव नहीं केवल रूपान्तरण होता है। रूपान्तरण ही पुनर्जन्म कहलाता है। ब्रह्मांड में चौरासीलाख योनियाँ पाई जाती हैं। जड़, चेतन, स्थावर, जंगम, वनस्पति, कीट भृंग, जीवाणु, प्राणी सभी आत्मशक्ति से ओत–प्रोत हैं। अत: आत्मा नाशवान नहीं है केवल इसका रूप परिवर्तन होता है, इसका मतलब हुआ कि इस अखण्ड अखिल ब्रह्माण्ड में आत्माओं की एक निश्चित संख्या है। अपने कर्मों के कारण हम कभी मनुष्य योनि, कभी जानवर, कभी कीड़े–मकोड़े कभी पेड़–पौधे इत्यादि योनियाँ धारण करते हैं। इन योनियों से छुटकारा पाना सहज नहीं है। प्रथम तो मनुष्य रूप धारण करना ही कठिन होता है। रामचरित मानस में कहा गया है– ''**बड़े भाग्य मानुष तन पावा, सुर मुनि दुर्लभ ग्रंथन गावा**''।

अत: केवल गुरु आशीर्वाद से ही जन्म सफल किया जा सकता है। योग ही केवल अमर विद्या है जो पुनर्जन्म होने पर भी साथ रहती है। जिस प्रकार सी.डी. में गानों की लय, ताल आदि अंकित हो जाती है तथा सी. डी. प्लेयर की सहायता से गानों को भली प्रकार सुना जा सकता है। उसी प्रकार हमारे कर्मों की भाषा, संस्कार आदि भी आत्मा में अंकित (जमा) हो जाते हैं जो शरीर धारण करने पर समयानुसार भोग के लिए प्रगट हो जाते हैं।

शोक संवेदना

यह सूचित करते हुये दु:ख हो रहा है कि डा. राजकुमार सिंह (महुआ खेडा निवासी) 10 जनवरी 2008 को 93 वर्ष की अवस्था को पाकर नश्वर देह का त्याग कर गये। वे गुरुदेव के अनन्यनिष्ठ शिष्यों में से एक थे। इस दुखद बेला पर सभी परिवारी जनों को सिद्धयोग परिवार व आश्रमवासी हार्दिक संवेदना प्रेषित करते हैं। श्री प्रभु जी उन्हें अपने चरण कमलों में स्थान दें।

–सम्पादक, सिद्धयोग

अष्टांग योग - (2)

डा. ऋषिराम शर्मा, लखनऊ

अब मैं संक्षेप में अपनी बुद्धि की समझ के अनुसार इन सप्त समाधियों का वर्णन करूंगा।

पहली समाधि है वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि। परमात्मा की सृष्टि तथा समाधियों के भेदों का गुणों की स्थिति से सीधा सम्बन्ध है। वास्तव में प्रकृति परमात्मा की माया है, परमात्मा स्वयं मायावी यानि मायाधीश है तथा तीन गुण ही मायावी का माया दिखाने वाला जादुई डन्डा है। उपनिषदों का भी यही संकेत है कि

''मायां तु प्रकृतिं विद्यात् मायिनं तु महेश्वरम्''

अर्थात प्रकृति माया है और महेश्वर मायाधीश है इसलिए समाधि इस माया को जानने का साधन होने का कारण गुणों की विशेष स्थितियों पर निर्भर करती है। अतः समाधि के चारभेद वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत तथा अस्मितानुगत का चार गुणपर्वों से सम्बध है।

महर्षि पतंजलि ने वितर्कानुगत समाधि को इस प्रकार परिभाषित किया है कि –

''वितर्कः चित्तस्य आलम्बने स्थूलाः भोगाः''

अर्थात वितर्कानुगत समाधि में चित्त का आलम्बन-प्रत्यय स्थूल पदार्थ तथा स्थूलभोग होते हैं यानि चित्त की एकाग्रता का विषय स्थूल होता है। ध्येयाकार बुद्धि ध्येय के स्थूल रूप प्रत्यक्ष अनुभव करती है। यदि भगवान शिव को ध्येय बना कर चित्त समाधि में प्रवेश किया है तो भगवान शिव के स्थूलस्वरूप के दर्शन होंगे, उनकी लीलाओं का दर्शन होगा, उनका तेज चित्त में प्रवेश करेगा तथा शिवशक्तियों का आभास होगा। योगी का मन शिवमय हो जायेगा। इस समाधि का कार्यक्षेत्र मनोमय कोष है तथा करणशक्तियाँ सूक्ष्म इन्द्रियाँ होंगी। मन में जो भी संकल्प उदय होगा, इन्द्रियाँ उस संकल्प का पालन करेंगी यानि संकल्प का स्थूलभोग प्रकट हो जायेगा। इस समाधि में स्थूलशरीर की देश तथा काल की सीमायें समाप्त हो जाती हैं तथा बुद्धि को ज्ञान मन तथा सूक्ष्म इन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त होता है। इसी सीमित कार्यक्षेत्र में ध्येय-प्रत्यय का प्रत्यक्षीकरण होता है।

वितर्क समाधि की परिपक्वता हो जाने पर मन तथा इन्द्रियां शान्त हो जाती हैं, तमोगुण तथा रजोगुण भी शांत हो जाते हैं तथा सतोगुण का प्रकाश देदीप्यमान हो जाता है, तब कुछ समय के लिए शनैः शनैः ध्येय-प्रत्यय लुप्त जैसा हो जाता है तथा बुद्धि भी वितर्कसमाधि के संस्कारों से युक्त होकर आत्मतत्त्व में लीन हो जाती है, तब चित्त की इस स्थिति को

वितर्कानुगत असम्प्रज्ञात समाधि कहा जाता है। इस समाधि में बुद्धिगत अहंता में अतिसूक्ष्म विषयों को ग्रहण करने की योग्यता परमात्मा की कृपा से प्राप्त होती है। यह एक रहस्य की बात है कि "योगः योगिनमध्यापयेत्" अर्थात हृदय में बैठा परमस्नेही, सर्वसाक्षी मायाधिपति परमात्मा योगाभ्यासी जीवात्मा को योगानुभूति के द्वारा अग्रिम भूमिकाओं को सिखाता है। वास्तव में असम्प्रज्ञात समाधि परमात्मा की इसी भूमिका का अंग है। गीता में जगदीश्वर श्री कृष्ण ने इसका संकेत भी दिया है कि–

तेषां नित्याभियुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुयान्ति ते।।
तेषामेवानुकम्पार्थं अहमज्ञानजं तमः।
नाशयामि आत्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता।।

अर्थात् जो योगाभ्यासी नित्य तथा निरन्तर श्रद्धापूर्वक अपने अभ्यास में लगे रहते हैं और जैसे–जैसे उनका अभ्यास दृढ़ होता जाता है, उनमें वैसे–वैसे प्रेम–भक्ति की अमृत की धारा प्रवाहित होने लगती है। इसका परिणाम यह होता है कि उनके हृदय में यानि ध्यानस्थ चित्त में परमात्मा के द्वारा बुद्धियोग का प्रादुर्भाव होता है जिसके द्वारा जीवात्म भाव परमात्मभाव में परिवर्तित होता जाता है, क्योंकि चित्त आत्मतत्व के प्रकाश से प्रकाशित हो जाता है तथा अविद्या का अंधकार नष्ट होता जाता है। आत्मतत्व के रूप में विराजमान परमात्मा ज्ञानज्योति के रूप में प्रकट होकर चित्त के सभी क्लेशों के मलावरण को नष्ट कर देता है; क्योंकि

भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।

अर्थात परमात्मा के प्रकाश से प्रकाशित चित्त में चित्तवृत्तियों का निरोध हो जाने पर अविद्याजनित देहाध्यास की हृदयग्रन्थि टूट जाती है, सभी अविद्याजनित संशय नष्ट हो जाते हैं, कर्माशय भस्म हो जाता है तथा योगसिद्धि के रूप में ज्ञानचक्षु की प्राप्ति हो जाती है।

जब योगी की बुद्धिगत अहंता विचारानुगत समाधि में प्रवेश करती है तब सृष्टि के कारणभूत गुण विशेष तथा लिंगमात्र अवस्था में आ जाते हैं। इससे बुद्धि का पंचभूतों की सूक्ष्म तन्मात्राओं में प्रवेश हो जाता है तथा सृष्टि की उत्पत्ति के रहस्य प्रकट होने लगते हैं। योगी का ब्रह्मलोक तथा बैकुन्ठ लोक जैसे दिव्य लोकों में प्रवेश हो जाता है। वह प्रकृति के रहस्यों को जानने की योग्यता प्राप्त कर लेता है। इस समाधि में विज्ञानमय कोष कार्यक्षेत्र है तथा बुद्धि करणशक्ति है। चित्त स्थूलशरीर तथा सूक्ष्मशरीर की देश तथा काल की सीमाओं से मुक्त रहता है, केवल कारण शरीर के अधिकार–क्षेत्र में रहता है। विचारानुगत समाधि की परिपक्वता हो जाने पर स्वतः इस समाधि में प्रकाशित ध्येय प्रत्यय लुप्त सा हो जाता है, केवल उसके सूक्ष्म संस्कारों से युक्त बुद्धिरूपी प्रज्ञा का असम्प्रज्ञात समाधि में प्रवेश होता है, चित्त में

नवीन परिवर्तन होते हैं तथा परमात्मभाव की आनन्दस्थिति को ग्रहण करने की योग्यता आ जाती है। यह सब स्वतः परमात्मा की कृपा से घटित होता है और योगी का आनन्दमय कोष में प्रवेश होता है जहाँ उसे आनन्दानुगत समाधि की प्राप्ति होती है। जगदात्मा श्रीकृष्ण ने इसकी पुष्टि की है कि :-

युंजन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्श अन्त्यन्तं सुखमश्नुते।।

अर्थात् मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों के शांत हो जाने पर चित्तवृत्तियों की विरामावस्था में चित्त ब्रह्ममय हो जाता है तथा मलावरण के नष्ट होने से स्वतः ही परमात्मा का ज्ञानस्वरूप प्रकट हो जाता है, क्योंकि "**तदा दृष्टु स्वरूपे अवस्थानम्**" यानि चित्तवृत्तियों के अभाव में दृष्टा अपने सत्यस्वरूप में दिखाई देने लगता है। परिणामस्वरूप अनन्त तथा अक्षय सुख की अनुभूति होने लगती है। यही आनन्दानुगत समाधि का परिणाम है। उपनिषद में इस सत्य को इस प्रकार वर्णित किया है कि:-

"एषोऽस्य परमानन्दः एतस्यैव आनन्दस्यान्यानि
भूतानि मात्रामुपजीवन्ति" (बृह0 4/33/2)

अर्थात् यही परमात्मा का परमानन्द स्वरूप है जिसके आनन्दस्वरूप में स्थित जीवात्मायें विषयों के अंशमात्र सुख में जीवित रहती हैं।

यदि हम भक्तात्माओं जैसे चैतन्यमहाप्रभु, रामकृष्ण परमहंस, गोस्वामी तुलसीदास, सूरदास तथा नरसी मेहता आदि के जीवन का अध्ययन करें तो पायेंगे कि वह सब आनन्दानुगत समाधि में ही सदा लीन रहते थे। योगियों का जीवन तो बहुत विलक्षण है, वह तो योगेश्वर श्रीकृष्ण की तरह समस्त योगैश्वर्य को छिपाकर साधारण मनुष्य के रूप में दिखाई देते हैं। हमारे दादा गुरु महावतार प्रभु जी तथा गुरुदेव जी का सारा जीवन इन रहस्यों से भरा था। हमारे प्रारब्ध ने हमें उन्हें समझने का अवसर ही नहीं दिया। अब तो पश्चाताप के आंसू ही कभी वह अवसर प्रदान करेंगे।

चित्त की कैसी स्थिति में योगी आनन्दानुगत समाधि में प्रवेश करता है और उसे कैसी अनुभूतियां होती हैं? यह बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न है। विषय परोक्ष अनुभव का है तथा साधारण बुद्धि इसे ग्रहण भी नहीं कर सकती। अतः श्रद्धालुओं के लिए योगीश्वर श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से ही मैं इसका उत्तर देता हूँ कि :-

यत्रोमरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन् आत्मनि तुष्यति।।
सुखमात्यान्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यं अतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्वतः।।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।।

अर्थात जब ध्यान–समाधि की योगसाधना के द्वारा चित्त यानि मन, बुद्धि तथा इन्द्रियाँ उपरामावस्था को प्राप्त हो जायें यानि चित्तवृत्तियों का निरोध हो जाये तथा चित्त में चिदाकाश का प्रकाश व्याप्त हो जाता है जिसमें आत्मसाक्षात्कार का अनुभव होने लगे, तब चित्त आनन्दानुगत समाधि में होता है। उस स्थिति में विशुद्ध बुद्धिरूप प्रज्ञा इन्द्रियातीत अक्षय सुख का अनुभव करती है। इस स्थिति को पाकर चित्त न तो विषय–सुख की कामना करता है और न किसी भी प्रकार के दुःख का अनुभव करता है, क्योंकि तत्वज्ञान के पश्चात उसकी दृष्टि में आत्मानंद से बड़ा कोई सुख होता ही नहीं, वह आप्तकाम तथा सत्यसंकल्प वाला योगी हो जाता है।

आनन्दानुगत समाधि की परिपक्वता के पश्चात योगी का चित्त अस्मितानुगत समाधि में प्रवेश करता है। इस समाधि में योगी को दो विशेष उपलब्धियाँ प्राप्त होती हैं। वह हैं:– 1. **चित्तनिर्माणशक्ति**, 2. **ऋतम्भरा प्रज्ञा**। इनके विषय में बाद में विचार करेंगे। सर्वप्रथम हम बताना चाहेंगे कि अस्मितानुगत से क्या तात्पर्य है। इस समाधि में अपने अस्तित्व का बोध होता है कि मैं ही सर्वव्याप्त ब्रह्म हूँ। योगी को यह प्रत्यक्ष ज्ञान होता है जिसका वर्णन उपनिषदों में किया गया है कि:–

''एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म, तत्सत्यं सः आत्मा तत्त्वमसि''

(छन्दो. 6/8/7)

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी केवलो निर्गुणश्च:

(श्वेता. 6/11)

''सः वा एव महानजः आत्मा योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु
हृदयान्तर्ज्योतिः पुरुषः'' (बृह. 4/4/12)

अर्थात एक ही अद्वितीय ब्रह्म है, वही परमसत्य है, वही अपरिणामी आत्मा है और वह तुम हो यानि जीवात्मा पर नाम –रूप का आवरण तथा क्लेशों से उत्पन्न देहाध्यास की भ्रान्ति को हटा दिया जाये तो शेष अपरिणामी ब्रह्म ही रहेगा। सभी प्राणियों में एक ही परमात्मा गुप्त है जो कि सर्वव्यापी है, सब चर तथा अचर की अन्तरात्मा है, कर्मों का आधार एवं स्वामी, समस्त ब्रह्माण्ड का अधिष्ठान, सभी चित्तों का साक्षी तथा गुणातीत परब्रह्म है। वही महानतम अजन्मा आत्मतत्व है जो कि सभी प्राणियों में ज्ञानस्वरूप क्षेत्रज्ञ है तथा शरीरधारियों के हृदय में अन्तर्ज्योति परमपुरुष है। इस परम सत्य का अनुभव योगी को अस्मितानुगत समाधि में हो जाता है, क्योंकि उसका चित्त अनन्त चिदाकाश में लीन हो जाता है।

ध्यान

प्रेषक : जनक कुलश्रेष्ठ, ग्वालियर (म.प्र.)

कतिपय व्यक्तियों में समाधि या ध्यान के बारे में यह भ्रान्ति है कि यह उन साधुओं और सन्यासियों से सम्बन्धित है, जिन्होंने जगत के कर्त्तव्यों से मुख मोड़ लिया है। कुछ व्यक्ति इसे मात्र व्यायाम जैसी कोई शारीरिक कसरत समझते हैं। परंतु कुछ ज्ञानिजन यह भी जानते हैं कि यह मन को वश में करने का एक विज्ञान है और इससे शारीरिक शक्ति को केन्द्रित कर अनेक महत् कार्य किये जा सकते हैं।

योग दर्शन में योग के आठ अंग हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इनमें से प्रथम पांच अंग बहिरंग हैं और अन्तिम तीन अन्तरंग साधन हैं।

''देश बन्धश्चित्तस्य धारणा''

चित्त की वृत्ति को एक स्थान पर बांधने को धारणा कहते हैं। जब यह धारणा पुष्ट हो जाती है तब ''**तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्**'' धारणा में जिस वृत्ति मात्र से मन ध्येय में लगता है, तब वह वृत्ति तैलधारावत समान प्रवाह से लगातार बनी रहे और बीच में कोई अन्य वृत्ति चित्त में न आवे तब उसको ध्यान कहते हैं।

''वीतराग विषयं वा चित्तम्'' 1/37

अथवा ध्यान किसी वीतरागी महापुरुष का करना चाहिए। अथवा श्री गुरुदेव जी ने जिस इष्ट देव का ध्यान करने दिया हो, उस इष्टदेव में ध्यान करना चाहिए। इस प्रकार के ध्यान से वीतरागी पुरुष के लक्षण साधक में जैसे–जैसे साधना परिपक्व होती जायेगी, वैसे–वैसे उस इष्ट देव के गुण व लक्षण साधक में आने लगते हैं। तथा गुरुदेव ने शरीर के जिस चक्र पर ध्यान करने का आदेश दिया है, उसी अंग पर अपने इष्ट देव का दर्शन अनवरत करते रहने की चेष्टा करनी चाहिए।

साधक को अपनी दिनचर्या नियमित करना चाहिए। प्रातः 3 बजे अपने बिस्तर को छोड़कर एक लिटर पानी पीकर शौच जाकर स्नान करना चाहिए। तदुपरान्त 5 बजे तक जीवन तत्व साधन करना आवश्यक है। ठीक 5 बजे प्रातः ध्यान में बैठकर सर्वप्रथम श्री गुरुदेव तथा इष्टदेव की मानस पूजा करना अनिवार्य है। इस पूजा में इष्ट देव का चरणामृत पियें। उनको स्नान करायें तथा तिलक चन्दन, फूलमाला से सुसज्जित करने की कल्पना करें। इसके बाद नाड़ी शोधन करके सुषुम्ना को चलाने का प्रयत्न किया जावे। जब सुषुम्ना चलने लगे तब ध्यान में बैठ जावें।

प्रारम्भिक अवस्था में साधक को अपने चित्त को एकाग्र करने के लिए खुली आँखों से

अपने इष्ट को अनवरत देखते रहना चाहिए अथवा अपने प्रभुजी के स्वरूप की ओर टकटकी लगाकर देखते रहें। कुछ समय बाद उसी इष्टदेव के स्वरूप अपने गुरुपदिष्ट शरीर के चक्र पर देखने का प्रयास करें और कल्पना करें कि उसका इष्ट देव पूर्ण परमेश्वर है। वह क्लेश, कर्म, कर्मफल आदि से रहित है। वह अकाय पुरुष है। उसके इष्ट तक काल की पहुँच नहीं है।

ध्यान करने के लिए एकान्त और पवित्र स्थान होना चाहिए। ध्यान उस स्थान पर अच्छा लगता है, जहां चिड़ियों की चहचहाट भी सुनाई नहीं देती है। इसके लिए नदी तट, वन में एकान्त स्थान अथवा एकान्त मन्दिर आदि हो। यदि परिस्थिति वश साधक को उपर्युक्त स्थान उपलब्ध न हो सके तो घर में ही एक कमरा भजन–ध्यान के लिए प्रथक से रखा जाये। उस कमरे में भोजन शयन नहीं करना चाहिए तथा अपने से भिन्न विचार वाले व्यक्ति को उस कमरे में प्रवेश नहीं करने दिया जाये। यदि परिस्थिति वश इस प्रकार का भी वातावरण उपलब्ध न हो सके तो साधक उन परिस्थितियों के अनुसार अपने को ढाल कर अनवरत ध्यान करते रहना चाहिए। ध्यान सदैव नियत समय पर और अनवरत करते रहना चाहिए। क्योंकि नियमित ध्यान न करने से साधक की ध्यान की स्थिति अवरुद्ध हो जाती है।

ध्यान करते समय यदि साधक के मन में किसी प्रकार का विक्षेप आता है अथवा तमोगुणी विचार आते हैं तो ऐसी स्थिति में साधक को चिंतित नहीं होना चाहिए। साधक उन विचारों से न राग करे और न द्वेष करे, बल्कि तटस्थ होकर देखता रहे। ऐसा करते रहने से कालान्तर में इस प्रकार के बुरे विचार मन में आना स्वतः बन्द हो जायेंगे।

ध्यान के समय साधक के मन में जो अन्यान्य विचार आते हैं तो साधक समझता है कि उसका ध्यान नहीं लग रहा है। बात ऐसी नहीं है। उसका ध्यान अवश्य लग रहा है। ध्यान में साधक की सतोगुणी वृत्ति होती है और ये विचार रजोगुणी या तमोगुणी वृत्ति के होते हैं। सतोगुण के प्रबल प्रभाव के कारण ये रजोगुणी और तमोगुणी विचार उसी प्रकार भागते हैं, जिस प्रकार किसी कमरे में पांच–दस चोर बैठे हों और उनके बीच में अचानक एक थानेदार के कमरे में प्रवेश करते ही उन चोरों में भगदड़ मच जाती है। इसी प्रकार ध्यानी के कुविचार सतोगुण के प्रभाव से पलायन करते हैं। अन्त में कुछ समय बाद ये विचार पूर्ण रूपेण मन से निकल जाते हैं और मन में सतोगुण का प्रकाश होने लगता है।

साधक को ध्यान से अनेक लाभ होते हैं। ''**ध्यान हेयास्तद वृत्तय**'' ध्यान करने से साधक पंच क्लेशों से निवृत्त हो जाता है। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ये पांच क्लेश हैं। अविद्या अन्य चारों क्लेशों की जननी है। अविद्या के कारण ही जड़ता से राग–द्वेष करने से बार–बार जीव का जन्म–मरण होता रहता है। वह अविद्या के कारण यह नहीं जानता है कि राग–द्वेष जिनसे किया जाता है वे शरीर आदि परिवर्तनसील, अस्थायी और नाशवान हैं। मैं चेतन अविनाशी हूँ। यह जीव नहीं जान पाता है। ध्यान से साधक में विवेक जाग्रत होता है और परिणामतः जड़ता से मुख मोड़कर स्वयं (आत्मा) में स्थित होकर कृतार्थ हो जाता है।

ध्यान मन की चंचलता पर विजय पाने का अमोघ अस्त्र है। ध्यान करने से शरीर में

स्फूर्ति और ताजगी आती है। शरीर निरोग रहता है। ध्यान काल में श्वांस के रूक जाने से स्नायुयों का बल बढ़ता है। खाया हुआ अन्न ठीक से पच जाता है। रक्त कण बढ़ते है। नित्य ध्यान करने वाले की छोटी–मोटी बिमारियां ठीक हो जाती हैं। विषयों की लालसा मिट जाती है। चेहरे की कान्ति बढ़ती है। स्वर में मिठास आ जाती है। ध्यान से अन्तर शक्ति जाग्रत होती है।

ध्यानी साधक को खान–पान का विशेष ध्यान रखना चाहिए। आहार सात्विक और नेक कमाई का हो। युक्त विहार करे। सोना, घूमना आदि क्रियाओं की कमी उपेक्षा न करें। तथा न कभी अधिक शारीरिक श्रम करें। अधिक श्रम करने से इन्द्रियां थक जाती है। दुष्ट व्यक्तियों का संग भूल कर भी न करे। इनके संग से मन दुर्बल हो कर अनाचार की ओर अग्रसर हो जाता है। साधक को नियमित अभ्यास करना चाहिए। भिन्न विचार वाले व्यक्तियों के साथ रहने से चित्त विक्षिप्त हो जाता है। अपने से समान विचार वालों के साथ रहना चाहिये। अधिक बातचीत भी नहीं करना चाहिए। अधिक बात चीत करने से मन चंचल हो जाता है। जिन्होंने प्रत्यक्ष अनुभव किया है, केवल उन्हीं संतों के ग्रन्थों को पढ़ना चाहिए। साधक को अनेक गुरुओं के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। केवल एक गुरु व उसके भाव को पकड़ना चाहिए। जो एक भाव को पकड़कर साधना में रत रहते है, वे ही साधक कृतकृत्य होते हैं। अध्यवसायी साधक ही अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

स्वामी मुक्तानन्द जी (गणेशपुरी) ने सत्य ध्यान करने की निम्नलिखित विधियां बताई है:–

1. **तटस्थता से ध्यान**– संत श्री तुकाराम जी ने लिखा है कि ध्यान पूर्ण तटस्थता के साथ करो। ध्यान इतना गहरा होना चाहिए कि मन की वृत्तियां शांत हो जाये।

2. **एकाग्रता**– जो भी कर्म करो, पूर्ण एकाग्रता से करो। कार भी बिना एकाग्रता के सफलतापूर्वक नहीं चलाई जा सकती है। बस यही ध्यान है। अन्तर भजन भी एकाग्रता के साथ करो। कार चलाना आदि सभी क्रियायें एकाग्रता से ही की जाने में सफलता मिलती है। अन्यथा दुर्घटना हो सकती है।

3. **आत्म स्मृति**– सभी कर्मों के बीच आत्म स्मृति ही ध्यान है। सत्य ध्यान तब होता है जब यह चौबीस घंटे चलता रहता है और साधक का ध्यान निरन्तर चलता रहे।

4. **गुरुकृपा**– परमानन्दमय ध्यान की अवस्था गुरु कृपा से सुलभता से प्राप्त होती है।

5. **गुरुमंत्र**– मंत्र के जपने से बड़ी आसानी से ध्यान लगता है। मंत्र जप से आध्यात्मिक प्रगति होती है। बुद्धि निर्मल व दृढ़ हो जाती है। और अन्ततः बुद्धि मंत्रमय हो जाती है। श्री मद्भगवतगीता में भगवान ने आध्यात्मिक बुद्धि का महत्व बताया है। वे कहते हैं "**ददामि बुद्धि योगं तं येन मामुपयान्ति ते**"। अर्थात जो निरन्तर मेरे ध्यान में लगे रहते हैं उनको मैं तत्वज्ञान रूप योग देता हूं। जिससे वे मुझको भी प्राप्त होते हैं।

6. **मन्त्र** – बुद्धि की धारा को नई दिशा देता है। अन्ततः उसे परावाणी तक पहुँचा देता

है। जहाँ से मिलन का उदय होता है। जो वाणी का अन्तिम और सूक्ष्मतम स्तर है। यह ध्यान की अन्तिम गति है। जिससे दिव्य रहस्यों का उद्‌घाटन होता है।

श्री सद्‌गुरुदेव अपने प्रवचनों में कहा करते थे कि प्रारम्भ में मन को एकाग्र करने के लिए तल्लीनता के साथ संकीर्तन करना चाहिए यह **बैखरी वाणी** है।

जब मन की एकाग्रता कुछ दृढ़ हो जाये, तब उपांशु जप करें। इस जप में जिव्हा चलती है और ओंठ हिलते हैं, परंतु पास में बैठे हुए व्यक्ति को उसकी ध्वनि नहीं सुनाई देती है। यह **मध्यमा वाणी** है।

उपांशु जप दृढ़ हो जाने पर मानसिक जप होता है। इस जप में ओंठों का हिलना भी बन्द हो जाता है। यह जप चलते–फिरते व अन्य कार्य करते हुए भी अनवरत करते रहना चाहिए। यह **पश्यन्ति वाणी** है।

मानसिक जप के पुष्ट हो जाने पर यही जप बुद्धि में प्रविष्ठ हो जाता है जो **परावाणी** तक पहुँचा देता है।

अतः सोऽहम–हंसः मंत्र का जप गुरुदेव के आदेशानुसार मूलाधार चक्र पर अर्थ की भावना के सहित करते रहना चाहिए। क्योंकि इस गुरु मंत्र में गुरुदेव की शक्ति, तथा वीतरागी पुरुषों की शक्ति काम करता है। ●●●

मेरी विनती सुनो करतार

मेरी विनती सुनो करतार
तुम्हारे दर आया हूँ
मेरी विनती—
राम दुलारे कृष्ण प्यारे
चन्द्रमोहन जगतार
तुम्हारे दर आया हूँ
तेरी लीला अपरम्पार
तुम्हारे दर आया हूँ
श्री सिद्ध गुफा के द्वार खड़ा हूँ
कैसे जग से पिण्ड छुड़ाऊँ
हो जाऊँ भव पार
तुम्हारे दर आया हूँ—
जग की सारी भीड़ अनाड़ी खोलो अन्तः द्वार

हमें समझावो करतार
तुम्हारे दर आया हूँ
मेरी विनती —
जनम जनम से घोर अंधेरा
इस जग में है भूलों का डेरा
अब कैसे हो भव पार
तुम्हारे दर आया हूँ
मेरी विनती—

–मोहन स्वरूप गोस्वामी

प्राणायाम का शरीर पर प्रभाव

(2)

—: स्वामी कुवलयानन्द जी :—

योग के दयालु आचार्यों ने प्राणायाम के रूप में हमें एक ऐसा तीक्ष्ण शस्त्र पकड़ा दिया है जिसके द्वारा हम श्वास सम्बन्धी रोगों को सफलता से दबा सकते हैं। कैसे दुःख की बात है कि हम भारतवासी इस शस्त्र को उपयोग में नहीं ले रहे हैं। हमें हजारों और लाखों की संख्या में श्वास सम्बन्धी रोगों के शिकार होकर काल के गाल में जाना कबूल है, पर हम प्राणायाम जैसे अव्यर्थ साधना का प्रयोग नहीं करेंगे। हा दुर्दैव ! अकेले बम्बई नगर में प्रतिदिन जितने मनुष्य काल के गाल में जाते हैं उनमें से तिहाई से अधिक मनुष्य श्वास संबंधी रोगों से मरते हैं। अभी हाल की स्वास्थ्य संबंधी विज्ञप्ति से पता लगता है कि बंगाल में एक ही साल के भीतर एक लाख मनुष्य राजयक्ष्मा से पीड़ित होकर मृत्यु के ग्रास बन गये। मुझे पक्का विश्वास है कि यदि इस देश के प्रत्येक शिक्षणालय में छात्रों को अनिवार्य रूप से प्राणायाम की शिक्षा दी जाये और जितना द्रव्य इस भयानक रोग की चिकित्सा के निमित्त व्यय किया जाता है, उसका एक अंश भी इस रोग निवारण के कार्य में लगाया जाय तो यह भयकर जनसंहार अवश्य बहुत कम हो जाय।

पुनः हम अपने प्रस्तुत विषय पर आते हैं – हम देखते हैं कि प्राणायाम के कारण पाकोपयोगी, श्वासोपयोगी एवं मल को बाहर निकालने वाले अंगों की क्रिया ठीक होने से रक्त अच्छा बना रहेगा। यही रक्त विभक्त होकर शरीर के भिन्न–भिन्न अंगों में पहुँच जायेगा। यह कार्य रक्तवाहक अंगों का खासकर हृदय का है। पाश्चात्य वैज्ञानिक भी इस बात को मान गये हैं कि दीर्घ श्वास लेने का अभ्यास करने से हृदय पर हल्की सी मालिश हो जाती है। प्राणायाम की क्रिया में हृदय के चारों ओर दबाव पड़ने से जो परिवर्तन होते हैं उन्हें हमने कैवल्यधाम की प्रयोगशाला में ध्यान पूर्वक देखा है और हमें यह जानकर प्रसन्नता हुई कि योग में प्राणायाम की जो प्रक्रिया बतलाई गयी है वह पाश्चात्य पद्धति के अनुसार दीर्घ श्वास लेने की अपेक्षा इस मालिश में अधिक सहायक होती है। इस विषय को अच्छी तरह से समझने के लिए हम पाठकों से अनुरोध करेंगे कि वे हमारे योग मीमांसा नामक अंग्रेजी ग्रन्थ को देखें। रक्त संचार से सम्बन्ध रखने वाला प्रधान अंग हृदय है और प्राणायाम के द्वारा उसके अधिक स्वस्थ्य हो जाने से समस्त रक्त वाहक अंग अच्छी तरह से काम करने लगते हैं।

परन्तु बात यहीं समाप्त नहीं हो जाती। भस्त्रिका प्राणायाम में, खासकर उस हिस्से में जो कपालभाति से मिलता–जुलता है, वायवीय स्पंदन प्रारम्भ होकर मानव शरीर के प्राय: प्रत्येक सूक्ष्म से सूक्ष्म अंग को, यहाँ तक कि नाड़ियों एवं सूक्ष्म शिराओं तक को हिला देते हैं। इस प्रकार प्राणायाम से सारे रक्त वाहक अंग समूह की कसरत एवं मालिश हो जाती है और वह

ठीक तरह से काम करने योग्य बन जाता है।

अब हम स्नायु जाल तथा अन्त:स्रावी ग्रन्थि समूह के विषय में कुछ कहेंगे। रक्त की उत्तमता और उसके समस्त स्नायुओं और ग्रंथियों में उचित मात्रा में विभक्त होने पर इनकी स्वस्थता निर्भर है। प्राणायाम में खासकर भस्त्रिका प्राणायाम में, रक्त की गति बहुत तेज हो जाती है और रक्त भी उत्तम हो जाता है (यह बात किसी शरीर विज्ञान सम्बन्धी प्रयोगशाला में प्रमाणित की जा सकती है)। इस प्रकार प्राणायाम से अन्त:स्रावी ग्रन्थि समूह को भी उत्तम और पहले की अपेक्षा प्रचुर रक्त मिलने लगता है, जिसमें वे पहले की अपेक्षा अधिक स्वस्थ हो जाती है। इसी रीति से हम मस्तिष्क, मेरुदण्ड, मस्तक की तथा मेरुदण्ड की नाड़ियों तथा अन्य सम्बन्धित नाड़ियों को स्वस्थ बना सकते है।

इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें अधिक ध्यान देने योग्य हैं। हम ऊपर बता चुके हैं कि शारीरिक शक्ति का मूल स्रोत मस्तिष्क है। मस्तिष्क के बाद दूसरा नम्बर मेरुदण्ड और उससे सम्बन्धित स्नायुओं का है। इन सभी स्नायुओं के, चाहे वे मस्तक के हों, चाहे मेरुदण्ड के, मुख्य भाग इन केन्द्रीभूत अवयवों के अन्दर उत्पन्न हुई शक्ति के वाहक मात्र हैं। अत: इस बात को देखना आवश्यक है कि मस्तिष्क, मेरुदण्ड और उससे सम्बन्धित स्नायुओं पर प्राणायाम का कैसा प्रभाव पड़ता है?

सभी शरीर विज्ञान विशारदों का इस विषय में एकमत है कि सांस लेते समय मस्तिष्क में से दूषित रक्त प्रवाहित होता है और शुद्ध रक्त उसमें संचरित होता है। यदि सांस गहरी हो तो दूषित रक्त एक साथ बह निकलता है और हृदय से जो शुद्ध रक्त वहाँ आता है वह और भी सुन्दर आने लगे। प्राणायाम की यह विधि है कि उसमें सांस गहरे से गहरा लिया जाय, इसका परिणाम यह होता है कि मस्तिष्क से दूषित रक्त सारा बह जाता है और हृदय का शुद्ध रक्त उसे अधिक मात्रा में मिलता है। योग उड्डीयान बन्ध को हमारे सामने प्रस्तुत कर इस स्थिति को और भी स्पष्ट कर देने की चेष्टा करता है। इस उड्डीयान बन्ध से हमें इतना अधिक शुद्ध रक्त मिलता है जितना किसी सांस सम्बन्धी व्यायाम से हमें नहीं मिल सकता। प्राणायाम से जो हमें तुरन्त बल और नवीनता प्राप्त होती है, उसका यही वैज्ञानिक कारण है।

मेरुदण्ड एवं उससे सम्बन्धित स्नायुओं के सम्बन्ध हम देखते हैं कि इन अंगों के चारों ओर रक्त की गति साधारणतया मन्द होती है। प्राणायाम से इन अंगों में रक्त की गति बढ़ जाती है और इस प्रकार इन अंगों को स्वस्थ रखने में प्राणायाम सहायक होता है। हम अभी बतायेंगे कि यह सब कैसे होता है। योग में कुम्भक करते समय मूल, उड्डीयान और जालन्धर–तीन प्रकार के बन्ध करने का उपदेश दिया गया है। इन बन्धों का एक काल में अभ्यास करने से पृष्ठवंश का, जिसके अन्दर मेरुदण्ड स्थित है, तथा तत्सम्बन्धित स्नायुओं का उत्तम रीति से व्यायाम हो जाता है। इन बन्धों के करने से पृष्ठवंश को यथास्थान रखने वाली मांसपेशियाँ, जिनमें तत्सम्बन्धित स्नायु भी रहते हैं, क्रमश: फैलती हैं और फिर सिमिट जाती हैं जिससे इन पेशियों तथा मेरुदण्ड एवं तत्सम्बन्धित स्नायुओं में रक्त की गति बढ़

जाती हैं। बन्ध यदि न किये जायें तो भी प्राणायाम की सामान्य प्रक्रिया ही ऐसी है कि उससे पृष्ठवंश पर ऊपर की ओर हल्का–सा खिंचाव पड़ता है, जिससे मेरुदण्ड तथा तत्सम्बन्धित स्नायुओं को स्वस्थ रखने में सहायता मिलती है।

स्नायुजाल के स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव डालने के लिये तो सबसे उत्तम प्राणायाम भस्त्रिका है। इस प्राणायाम में श्वास की गति तेज होने से शरीर के प्रत्येक सूक्ष्म–सूक्ष्म अंग की, जिसमें स्नायुजाल भी शामिल है, मालिश हो जाती है। विस्तार भय से हम इस सम्बन्ध में अधिक न कहकर केवल इतना ही कहना पर्याप्त समझते हैं कि प्राणायाम का स्नायुजाल पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है और स्नायुओं को स्वस्थ रखने के लिये यह सर्वोत्तम व्यायाम है।

यहाँ तक हम यह बता चुके कि प्राणायाम का मानव शरीर के अन्दर कार्य करने वाले मुख्य–मुख्य अंगों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि इनसे अतिरिक्त अंगों पर भी प्राणायाम का उतना ही अच्छा प्रभाव पड़ता है। इससे यह बात प्रमाणित होती है कि प्राणायाम हमारे शरीर को स्वस्थ रखने के लिये सर्वोत्तम व्यायाम है। वास्तव में भारत के प्राचीन योगाचार्य प्राणायाम को शरीर की प्रत्येक आभ्यान्तर क्रिया को स्वस्थ रखने का एकमात्र साधन मानते थे। उनमें से कुछ तो प्राणायाम को शरीर का स्वास्थ्य ठीक रखने में इतना सहायक मानते हैं कि वे इसके लिये अन्य किसी साधन की आवश्यकता ही नहीं समझते। हम अपने निजी अनुभव से निःसंकोच होकर यह कह सकते हैं, कि कोई भी व्यायाम प्राणायाम के शतांश की भी बराबरी नहीं कर सकता। वास्तव में प्राणायाम से शरीर की आभ्यन्तर क्रियाओं का नियन्त्रण ही नहीं होता अपितु इस शरीर यन्त्र को जीवन देने वाले प्रत्येक व्यापार पर अधिकार हो जाता है।

प्राणायाम के सम्बन्ध में विरोध परिहार

पश्चिम के कुछ शरीरविज्ञान विशारद उन सभी व्यायामों का विरोध करते हैं जिनमें गहरी सांस लेने का अभ्यास किया जाता है। इनके इस विरोध की आलोचना किये बिना इस लेख को समाप्त करना उचित नहीं होगा। इन शरीरविज्ञानविशारदों के नेता डा. लिंडहार्ड हैं, जो कोपेनहेगन विश्वविद्यालय के व्यायाम एवं शरीरविज्ञानसम्बन्धी प्रयोगशाला में अध्यापन का कार्य करते हैं, और डेनमार्क देश के राजकीय व्यायामशाला के प्रधान हैं। इन शरीर विज्ञान विशारदों का विरोध संक्षेप में यह है–

1. हमारे फेफड़ों के छिद्र उतना ही ऑक्सिजन ग्रहण करते हैं जितने की उन्हें आवश्यकता होती है। जब शरीर निश्चेष्ट होता है तब इन छिद्रों की आवश्यकता सामान्य श्वास–प्रश्वास से पूर्ण होती है। ऐसी दशा में शरीर के अन्दर ऑक्सिजन को आवश्यकता से अधिक मात्रा में ले जाना शरीर विज्ञान के सिद्धान्तों के प्रतिकूल ही नहीं अपितु युक्तिविरुद्ध भी है।

2. बड़े फेफड़े और श्वास सम्बन्धी व्यायाम राजयक्ष्मा आदि फेफड़े रोगों के परिपन्थी न होकर उलटे सहायक होते हैं।

पहली आपत्ति तो प्राणायाम के विषय में घट-ही नहीं सकती। ऊपर इस बात को खूब स्पष्ट कर दिया गया है कि प्राणायाम के अधिकांश भेदों में ऑक्सिजन अधिक मात्रा में हमारे शरीर में नहीं जाता। अकेले भस्त्रिका प्राणायाम की बात अलग है। उसके पहले अंश में, जो कपालभाति से मिलता–जुलता है, अवश्य ही ऑक्सिजन अधिक मात्रा में हमारे शरीर के अन्दर जाता है। परन्तु ऑक्सिजन की यह अधिक मात्रा तुरंत उपयोग में लाने के लिये होती है। इसके बाद जो कुम्भक और रेचक कुछ देर तक अर्थात कुछ मिनट तक किये जाते है उस समय भीतर के (सूक्ष्म) श्वासोच्छ्वास को यथावस्थित रखने के लिए और ऑक्सिजन के अभाव से छिद्र निराहार एवं निर्जीव न हो जाये, इसलिये भी इतना ऑक्सिजन आवश्यक होता है।

दूसरी आपत्ति के सम्बन्ध मे यह मानना पड़ेगा कि प्राणायाम से फेफड़े बढ़े हो जाते है। परन्तु जो लोग यह कहते है कि बढ़े फेफड़े राजयक्ष्मा के विरोधी न होकर उलटे सहायक होते है, वे लोग आधुनिक चिकित्सक के अनुभव की भी अवहेलना करते है। डा. श्मीट ने अपने 'व्यायामविज्ञान' नामक ग्रन्थ मे (जिसके लिखने में उक्त विद्वान् को दो एम.डी. तथा एक पी. एच.डी. उपाधिधारी विद्वान् का सहयोग भी प्राप्त हुआ है) यह साफ शब्दों में लिखा है कि ऐसे फेफड़ो के ही राजयक्ष्मा का शिकार बनने की सम्भावना रहती है जो पूरी तरह से बढ़ नही पाये है। पूरे तौर से बढ़े हुए फेफड़े इस रोग के शिकार नहीं बन सकते। डा. मेकेंजी एम.डी ने, जो पेन्सिल्वेनिया विश्वविद्यालय मे शारीरिक शिक्षा और व्यायाम चिकित्सा के अध्यापक है, अपने **शिक्षा एवं चिकित्सा में व्यायाम** नामक उत्तम ग्रन्थ में निम्नलिखित वाक्य लिखा है–

ओछे सीने के बालक, जिन्हे सांस लेने में कष्ट होता है, जिनके अन्दर राजयक्ष्मा के पूर्व चिन्ह प्रकट हो गये हैं तथा जो राजयक्ष्मा से पीड़ित हैं, उन्हें भी व्यायाम (श्वास के व्यायाम) से सबसे अधिक लाभ होता है। डा. बटलर और डा. रोजेन्थाल ने भी अपने अनुभव से डा. मेकेंजी का समर्थन किया है। डा. बटलर ने क्षयरोग की प्रारम्भिक अवस्था के कई रोगियो का हाल लिखा है जिन्हें श्वास सम्बन्धी व्यायाम से लाभ हुआ। डा. रोजेन्थाल ने प्रारम्भिक यक्ष्मा जनित पार्श्वशूल से पीड़ित 19 रोगियों का सविस्तार वृत्तान्त लिखा है जिन्हे श्वाससम्बन्धी व्यायाम से बहुत लाभ हुआ। इन सब प्रमाणो के सामने रहते हुए यह कहना कि श्वाससम्बन्धी व्यायाम उलटा फेफड़ो के यक्ष्मरोग में सहायक है, निरी मूर्खता है। डा. लिंडहार्ड आदि विद्वानों के लिये तो श्वाससम्बन्धी व्यायाम मात्र को बुरा कहना और भी अविवेकता का सूचक है, खासकर जब डा. लिंडहार्ड इस बात को स्वीकार करते है कि इन व्यायामों के सम्बन्ध मे अभी तक यह प्रमाणित नही हुआ है कि उनसे साक्षात् रूप में हानि होती है। अपने **'व्यायाम का सिद्धान्त'** नामक उत्तम ग्रन्थ के पृष्ठ 252 पर श्वास सम्बन्धी व्यायामों की कड़ी समालोचना करने के पश्चात् वे लिखते है–

'जिन श्वाससम्बन्धी व्यायामों की इतनी प्रशंसा की जाती है उनकी निन्दा पढ़कर लोग यह आपत्ति कर सकते है कि अभी तक यह प्रमाणित नही हुआ है कि उनसे स्पष्ट रूप में अहित होता है। यह बात सर्वथा सत्य है।'

श्वास सम्बन्धी व्यायामों से श्वासोपयोगी अंगसमूह को तो लाभ होता ही है, किंतु उनका असली महत्त्व तो इस बात को लेकर है कि उनसे अन्य अंगसमूहों को भी, खासकर स्नायुजाल को विशेष लाभ पहुँचता है। इन व्यायामों को लेकर शरीरविज्ञानविशारदों में जो यह युद्ध छिड़ा हुआ है वह इस बात को समझ लेने पर शान्त हो जायेगा। इन लोगों को एक बात और याद रखनी चाहिए। वह यह है कि पाश्चात्य पद्धति के श्वास सम्बन्धी व्यायाम अभी तक प्रारम्भिक अवस्था में है और बहुधा भ्रममूलक सिद्धान्तों पर अवलम्बित है। यदि पाश्चात्य देशनिवासी यथार्थ विधि से श्वास सम्बन्धी व्यायाम करना चाहते हैं तो उन्हें योग पद्धति के अनुसार प्राणायाम करना चाहिये।

प्राणायाम से हमारे शरीर पर कैसा प्रभाव पड़ता है, इस बात को सच्चे रूप में प्रकट करने के उद्देश्य से ही हमने इस विषय पर यह प्रबन्ध लिखा है। इस लेख को पढ़कर कोई बिना किसी प्रामाणिक ग्रन्थ अथवा प्रामाणिक गुरु की सहायता के प्राणायाम करना शुरू न कर दे। प्राणायाम दुधारे खाँड़े के समान है। इससे लाभ और हानि दोनों हो सकती है, बल्कि इससे लाभ उठाने की अपेक्षा इसका दुरुपयोग करना सहज है।

---

26 जनवरी गणतंत्र दिवस

शुभ विचार

श्रीमती निर्मला चन्देल

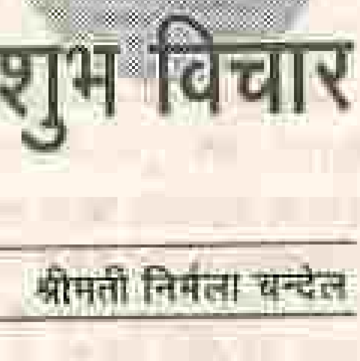

स्वतंत्रता, स्वाधीनता की परीक्षा है।
सुखी जीवन का आधार है।
मानव सुरक्षा से हिम्मत ना हारे
तो आजादी कदम चूम लेती है।
भारत-मातृश्री की सम्पन्नता
संयम और त्याग के सुमार्ग पर है।
संसार का कुदृश्य दर्शित नहीं होता
सुन्दर सुगामी भारत देश हमारा है।
विजयी स्वत्यागी होते रहे है।
हमारे सत्कार्य ही सौभाग्य बनाते है।
मानव शक्ति कष्ट का नहीं
संकल्प का आभारी है।
रक्षण का भी अधिकारी है।
सेनानी वही है जो
सजग शक्ति मान होता है।
मानव सेवा का ज्ञान ही
देश की सच्ची सेवा की शक्ति है।
भारत माता हमारी है,
हम है उनके हम है उनके कन्या रत्न, पुत्र रत्न
और है त्यागी भी, स्वाभिमानी जन।

गंगापुर सिटी में बही योग की गंगा

प्रेषक– संतोष कुमार शर्मा

प्रति वर्ष की भाँति इस वर्ष भी गंगापुर सिटी में 27 दिसम्बर से 2 जनवरी 2008 तक योग साधना शिविर का साप्ताहिक कार्यक्रम धूमधाम से सम्पन्न हुआ। यह साधना शिविर ध्यान योग के कोचिंग के रूप में कहा जाये तो अनुपयुक्त नहीं होगा। श्रद्धेय योगाचार्य श्री बाबूलाल जी महाराज के कुशल नेतृत्व में यह ध्यान योग शिविर चलता है। योग आश्रम में नीचे की तल में एक सुन्दर हाल है जिसमें सौ से अधिक साधक एक साथ बैठकर ध्यानाभ्यास में बैठते हैं। प्रातः 5 बजे से साढ़े छः बजे तक यह ध्यान साधना कक्षा चलती है। साढ़े छः बजे से आठ बजे तक जीवन तत्व साधन तथा योगासन का कार्यक्रम रहता है। इस आसन क्लास में डेढ़ सौ से दो सौ तक साधक भाग लेते हैं। सैकड़ों बालिकायें आश्रम के नीचे के हाल में आसन व यौगिक क्रियायें करती हैं। ऊपर छत पर व बरामदे में पुरुष वर्ग के लिये व्यवस्था रहती है। एक सप्ताह तक नियमित यह कार्यक्रम चलता है। योगाचार्य जी की यह इच्छा रहती है कि ध्यान योग की कक्षा के माध्यम से गृहस्थ साधक भी घरों में नियमित ध्यान में बैठने की आदत डालें तथा अन्तर्जगत में उनका प्रवेश हो। इस प्रकार से वे ध्यान साधना में प्रवीण बनें। साधन योग से ही सिद्धयोग की प्राप्ति होती है – ऐसा योगाचार्य जी सदा ही अपने व्याख्यानों में कहा करते हैं। इस साप्ताहिक कार्यक्रम में गुरुदेव के उत्कृष्ट भक्ति से ओत–प्रोत भजन बहुत ही आनन्ददायक रहे। वाराणसी से आये भाई प्रदीप जी का मण्डल, श्री सिद्ध गुफा सवाई से आये रघुराज व विनोद नागर के भजन तथा हरियाणा कुराणा से आये राजसिंह व जगसिंह के भजन बहुत ही भावोत्पादक रहे। इस कार्यक्रम में मण्डी (हिमाचल) से लखनऊ, बनारस, हरियाणा, मध्यप्रदेश तथा महाराष्ट्र से आये दो ढाई हजार साधकों ने साप्ताहिक शिविर का आनन्द लिया। दो जनवरी को, गुरुदेव भगवान की पावन स्मृति को अपने मन में बसाते हुये साधक अपने गन्तव्य की ओर चल पड़े। इस प्रकार से यह कार्यक्रम अत्यधिक आनन्द, प्रेरणा व शक्ति देने वाला रहा।

एक गुरु दक्षिणा यह भी!

स्वामी दयानंद अपनी शिक्षा पूर्ण होने पर अपने गुरुदेव स्वामी विरजानंद जी के पास गुरु दक्षिणा देने के लिए पहुँचे तो देने के लिए उनके पास केवल कुछ लौंग ही थी जो वे भिक्षा में मांग कर लाये थे। किंतु गुरुदेव ने कहा कि "मैं तुमसे वही वस्तु लूँगा, जो तुम्हारे स्वयं के पास है, तुम्हारी स्वयं की है।"

इस पर स्वामी दयानन्द ने श्रद्धापूर्वक उत्तर दिया– "गुरुदेव, यह सेवक तन मन से आपके चरणों में अर्पित है। आपका जो आदेश होगा, मैं आजीवन उसका पालन करूँगा।"

शिष्य का यह उत्तर सुनकर स्वामी विरजानन्द जी गद्गद् हो गये। उन्होंने आशीर्वाद देते हुए कहा कि "दयानंद भारत में कुप्रथा और पाखण्ड का बोलबाला है। अन्धविश्वास, अज्ञान, अशिक्षा आदि के कारण लोग पथभ्रष्ट हो रहे हैं। उनमें जागृति पैदा कर दीन हीन नर–नारियों का उत्थान करो। लोकहित की कामना के साथ अपना जीवन व्यतीत करो। मानव सेवा और देश सेवा के रूप में जो कार्य तुम करोगे, वही मेरी दक्षिणा होगी।"

गुरुदेव की आज्ञा का स्वामी दयानन्द ने पालन किया और ज्ञान, सदाचार, वैदिक धर्म, राष्ट्रीय स्वतंत्रता एवं स्वाभिमान का अलख आजीवन जलाते रहे।

श्री गुरुवर कृपा

कष्ट रहित मृत्यु

प्रेषक :– केशव देव उपाध्याय

उत्तर प्रदेश के मिरजापुर जनपद, अन्तर्गत, सदर तहसील में शहर की सीमा से सटा हुआ बेदौली गाँव है। उस गाँव में श्री सुखदेव कुम्भकार (कुम्हार) निवास किया करते थे। अब वे इस नश्वर संसार में नहीं हैं। सन् उन्नीस सौ अठासी के अप्रैल माह में उनका शरीरान्त हो गया। उनके तीन लड़के हैं, जिनके नाम क्रमशः श्री रामदेव, श्री मनोहर और श्री गोविन्द हैं। श्री रामदेव का शरीर भी अप्रैल नब्बे में शान्त हो गया। उनके द्वितीय पुत्र श्री मनोहर जी जूनियर हाई स्कूल में प्रधानाध्यापक पद से सेवा मुक्त हो गये हैं एवं उनके तीसरे पुत्र श्री गोविन्द जी इन्जीनियर है। उनकी पोस्टिंग पूना में चल रही है। पूना में काफी दिनों से कार्यरत हैं और इस समय शायद डिप्टी चीफ इन्जीनियर के पद पर कार्यरत है। उन्होंने पूना में ही अपना मकान बना लिया है जो आधुनिक सभी सुविधाओं से पूर्णतया परिपूर्ण है। सन् उन्नीस सौ अठासी के जनवरी माह में श्री मनोहर मास्टर जी आराध्यदेव एवं दादा गुरुदेव महाप्रभु जी के दिव्य स्वरूपों की प्रातः कालीन आरती के बाद, जब उनकी ध्यान की स्थिति बनी तो उनको एक विलक्षण दृश्य दिखलायी दिया। एक विकराल एवं भयावह आकृति का प्राणी दिखलायी दिया एवं उसने कहा कि तुम्हारे पिता सुखदेव की मृत्यु आज से मात्र ढाई महिने (दो महिने पन्द्रह दिन) शेष है। इसके बाद ये मृत्यु को प्राप्त हो जायेंगे। ध्यान के उत्तरार्ध में उन्होंने यह दृश्य देखा था। ध्यान से उठकर सामान्य स्थिति में आने के बाद, ये अपने पड़ोसी श्री इन्द्र बहादुर लाल श्रीवास्तव जी के घर जा कर मिले। श्री इन्द्र बहादुर लाल श्रीवास्तव जी सेवामुक्त सरकारी कर्मचारी हैं, तथा अध्यात्म जगत में उनका प्रवेश है; एक बहुत ही व्यवहारिक प्राणी है। उस समय, जब ये श्रीवास्तव जी के घर उपरोक्त रहस्य बतलाने पहुँचे थे, श्रीवास्तव जी के पास चार–पाँच पढ़े–लिखे बेरोजगार युवक बैठे थे। श्रीवास्तव जी से, हमारे गुरुभाई श्री मनोहर जी ने उचित अभिवादन के बाद, ध्यान वाली बात बतलायी कि महाकाल ने बतलाया है कि पिता जी मात्र ढाई महिने के मेहमान हैं। इनकी बातों को सुनकर श्री श्रीवास्तव जी कुछ गम्भीर हो गये एवं फिर बोले की चलो, शरीर तो बूढ़ा हो ही गया है, यह आप के गुरुदेव ने कृपा करके यह रहस्य आप को अवगत करा दिया। श्री इन्द्र बहादुर जी यह बात श्री मनोहर मास्टर से स्पष्ट शब्दों में कह रहे थे परन्तु वहा पर बैठे चार–पांच बेरोजगार युवक दबी जबान से आपस में बात कर रहे थे कि ये मनोहरा कुम्हार को देखो, ''अपने स्वस्थ बाप को मारने पर तुला हुआ है और यह चाहता है कि इसका बाप कितना जल्दी मर जाये।'' उन बेरोजगार युवकों की बातों को सुनकर श्री इन्द्र बहादुर जी ने उन सबों को डाटा एवं फिर कहा कि तुम लोग यहां से जाओ। श्री श्रीवास्तव जी की बातों को सुनकर वे युवक वहाँ से उठकर चले गये। इस सन्दर्भ में यह

बताना समीचीन होगा कि श्री मनोहर मास्टर जी के ध्यानानुभव प्रायः सत्य ही होते है।

अपने अनुज श्री गोविन्द जी को उन्होंने इस रहस्य से अवगत कराने हेतु पत्र लिख कर छोड़ दिया, जिसमें साफ–साफ लिखा था कि पिता जी का प्राणान्त आज से ढाई महिने बाद हो जायेगा। परिवार मे सब कुछ सामान्य चल रहा है एवं कोई नई बात, इसके अलावा नहीं है। इनके पिता जी, इनके मकान पर रात्रि निवास नहीं करते थे। श्री सुखदेव जी की धर्म पत्नि का देहावसान अप्रैल सन् चौरासी मे हो गया एवं उसके बाद उन्होंने अपने घर पर रात्रि निवास नही किया। वे घर से करीब एक किलोमीटर पर लगे अपने पम्पिंग सेट पर ही निवास किया करते थे और साथ ही भजन एवं भोजन वहीं किया करते थे। यद्यपि, खाना, नाश्ता एवं अन्य भोज्य पदार्थ उनके घर से ही बनाकर उनके यहाँ ट्यूबेल पर पहुँचाया जाता था। सब कुछ सामान्य चल रहा था एवं परिवार के सभी सदस्य सुखमय जीवन यापन कर रहे थे श्री मनोहर जी, उसी दिन से, जिस दिन मृत्यु होने का आभास हुआ था, दिन गिन रहे थे एवं एक दिन कम करते जा रहे थे। जब बीस दिन शेष रह गये तो श्री सुखदेव जी की तबियत खराब हो गई। श्री मनोहर जी ने अच्छी से अच्छी दवा देना आरम्भ किया परन्तु रंच मात्र भी लाभ नहीं हो रहा था। जब मात्र एक सप्ताह का समय शेष रह गया तो तबियत ज्यादे खराब हो गई। अच्छे से अच्छे डाक्टर एवं अच्छी से अच्छी दवा का भी उनके शरीर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा था। श्री मनोहर जी उस समय जूनियर [illegible] के सहायक अध्यापक के पद पर कार्यरत थे। पाचवा दिन चल रहा था और वे अपनी साइकिल से घर से स्कूल जा रहे थे। रास्ते में टेलीफोन विभाग का कार्यालय पड़ता है। वे जब वहां पहुँचे तो उस टेलीफोन विभाग के चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी ने कहा, ''मास्टर साहब आज, आप का चेहरा उदास क्यों है? क्या किसी कष्ट मे है?'' श्री मनोहर जी ने कहा कि भैया! हमें ऐसा आभास हुआ है कि जल्दी ही हमारे पिता जी की मृत्यु हो जायेगी। हम अपने भाई गोविन्द जी को खबर करना चाहते है, वही सोच रहा हूं कि कैसे खबर करू। उस कर्मचारी ने कहा कि यह कौन सी चिन्ता की बात है। उसने कहा कि मैं पढ़ा लिखा बिल्कुल ही नहीं हूं। आप को जो कुछ कहना है आप एक कागज पर लिख दीजिये। मै एक आदमी से फोन मिलवा कर अभी उनको बता देता हूं। आप उनका फोन नम्बर लिखिये, एवं उसके बाद पूरी बात लिख दीजिये। मास्टर साहब ने एक कागज पर उनका नाम, फोन नम्बर और पूरी बात लिख कर उन्हें दे दिया। उस चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी ने पास ही स्थित चाय की दुकान की तरफ इशारा करते हुये कहा कि आप इसी दुकान पर दो चाय बनवाइये। मै अभी गया और आया। इसके बाद वह श्री मनोहर जी द्वारा लिखे कागज को लेकर अपने टेलीफोन विभाग के अन्दर गया एवं मात्र पांच मिनट मे वापस चाय की दुकान पर आकर उनके साथ चाय पीने लगा। उसने कहा कि गोविन्द जी से हमारी बात हो गयी है और वे आज ही सायंकाल तक घर पहुंच जायेंगे। श्री मनोहर जी स्कूल मे पढ़ाकर सायंकाल साढ़े पांच बजे तक घर वापस आ गये। उनके छोटे भाई गोविन्द जी भी जहाज एवं कार द्वारा पूना से घर सायं सात बजे तक पहुँच गये। आते ही उन्होंने बारी–बारी से कई शहर के ख्याति प्राप्त डाक्टरों को दिखाया एवं रात्रि भर जग कर खूब सेवा

की। दूसरे दिन दोपहर में उन्हें वापस लौटना था।

श्री सुखदेव कुम्हार जी के तीनों पुत्र इस समय मकान पर उपस्थित थे। उन लोगों ने आपस में विचार किया कि हम तीनों आदमी चलकर उनकी अन्तिम इच्छा या वह कार्य जो जीवन में करना चाहते थे एवं नहीं कर सके की जानकारी उनसे ले ली जाये। अतः तीनों भाई प्रातः करीब साढ़े सात बजे एक साथ उनके सामने उपस्थित हुये एवं उनसे प्रार्थना किये कि आप की तबियत बीस दिन से खराब चल रही है एवं इधर सात दिन से आप की तबियत कुछ ज्यादे ही खराब चल रही है। आस–पास के सभी डाक्टरों से आप को दिखा दिया गया, परन्तु हम लोगों को रंच मात्र भी लाभ दिखलायी नहीं दे रहा है। पता नहीं परमात्मा ने क्या करने का विधान बना रखा है। जब सहोदर तीनों भाइयों ने एक साथ उपस्थित होकर यह निवेदन किया तो श्री सुखदेव जी ने चारपायी पर लेटे–लेटे ही तीनों भाइयों को देखा। इन अपने पुत्रों को ढंग से देखने के बाद करवट बदल लिये अर्थात इन लोगों की तरफ पीठ कर लिये। इनकी मृत्यु से सात दिन पूर्व श्री मनोहर जी ने, जब इनकी तबियत ज्यादे खराब थी, पूछा था कि पिता जी यदि आप को किसी से मिलने की इच्छा है तो उसे बता दीजिये, मैं उसे बुलवाने का प्रबन्ध करूंगा। उस समय श्री सुखदेव जी ने श्री मनोहर से कहा था कि गोविन्द को बुला लो। शायद सुखदेव जी के मन में यह भाव रहा होगा कि पहला लड़का खेती का कार्य करता है, दूसरा मास्टर है, जिसको बहुत ही कम वेतन मिलता है। किसी पैसा खर्च होने वाले कार्य को गोविन्द से ही कहना उचित रहेगा। इस समय जब तीनों लड़के सामने खड़े थे, उनके मन में संकोच हो रहा था कि तीनों के सामने यह बात कैसे कहें। इस रहस्य को श्री मनोहर जी समझ गये एवं उन्होंने अपने बड़े भाई श्री रामदेव से इशारा किया कि शायद पिता जी गोविन्द से कुछ बात करना चाहते हैं, अतः हम लोगों को थोड़ी देर के लिये बाहर निकल जाना चाहिये। दोनों भाई साथ ही कमरे से बाहर हो गये। इस बात का आभास श्री सुखदेव जी को हो गया एवं वह करवट बदल कर अपने बेटे गोविन्द की तरफ हो गये। श्री गोविन्द जी ने तत्काल कहा कि बोलिये पिता जी, क्या आदेश है। उन्होंने कहा कि गोविन्द जी अपनी जिन्दगी का लगभग सभी कार्य हमने कर लिया है सिर्फ एक कार्य शेष है पक्का मकान बनवाना मेरी यह इच्छा है कि यह कार्य तुम कर दो। तुम्हें जो दूसरा कार्य करना है, वह यह है कि मेरी मृत्यु के एक साल बाद गया जी जाकर हमें वहीं मुक्ति वाला साधन कर देना। श्री गोविन्द जी ने उनकी आज्ञा समाप्त होने के बाद निवेदन किया कि पिता जी पूना में बहुत बढ़िया पक्का मकान बना हुआ है, वह भी तो आप का ही है। इस गाँव के मकान की चिन्ता आप छोड़ दीजिये। यह बात दरवाजे से बाहर खड़े दोनों लड़के सुन रहे थे, वे तत्काल कमरे में आ गये। श्री मनोहर जी ने हाथ जोड़कर प्रार्थना किया कि पुराना मकान, तोड़कर, नया पक्का मकान मैं बनवा दूंगा तथा गया धाम भी मैं कर लूंगा। उन्होंने अपने पिता जी से कहा कि मैं ईश्वर को साक्षी मानकर यह वचन देता हूं कि यह दोनों कार्य अवश्य–अवश्य–अवश्य करूंगा। उसी दिन गोविन्द जी पूना गये।

पूर्वार्ध में यह लिखा गया है कि श्री सुखदेव जी पत्नी का शरीर छूटने के बाद गांव से

बाहर पम्पिंग सेट पर निवास करते थे। मृत्यु से तीन-चार दिन पूर्व इनके पुत्र गण गाव वाले मकान पर ले आये एवं श्री गुरुदेव भगवान के पूजाघर के बगल वाली कोठरी में चारपायी पर लिटाये। श्री सुखदेव जी के द्वितीय पुत्र श्री मनोहर जी महाकाल के बताने वाले दिन से ही ढाई महिने के समय से एक-एक दिन कम कर रहे थे। आज श्री सुखदेव की जिन्दगी का अन्तिम दिन था। अत: श्री मनोहर जी ने अपनी धर्मपरायणा अर्धांगिनी श्रीमती कमला देवी जी से कहा कि आज बाबू जी का कमरा गौ माता के गोबर से खूब अच्छी प्रकार लीप दो। उनको अच्छी प्रकार स्नान करा करके, साफ सुथरे कपड़े पहना दिया जाये। उसके बाद मैं श्री योगेश्वर द्वय की पूजा गृह में आरती के बाद ध्यान में बैठूंगा तथा तुम पिता जी के पास रहकर उनकी सेवा में रहना। उनकी पत्नी ने जिनका नाम श्रीमती कमला देवी है, अपने पति की आज्ञा का अक्षरश: पालन किया। श्री मनोहर जी आरती के बाद ध्यान में बैठ गये एवं श्री मती कमला देवी अपने श्वसुर की सेवा में उपस्थित हो गई। श्री मनोहर जी के आरती कक्ष में चौदह माह से अनवरत अखण्ड ज्योति जल रही थी।

श्री मनोहर जी अनवरत ध्यान में बैठे रहे। अपराह्न तीन बजे के बाद यमराज के दूत प्राण कोष खींचने के लिये आ गये। उनको देखकर श्री सुखदेव जी घबरा गये एवं बहुत डर गये। यमराज के दूतों द्वारा जब उन्हें पकड़ने का प्रयास किया जाता तो वे पास में बैठी अपनी बहू श्रीमती कमला देवी की बाह पकड़ कर अपनी तरफ खींचते, कभी उसके कपड़े पकड़ कर अपनी तरफ खींचते। जब वह अपनी बहू के सम्पर्क में किसी प्रकार आ जाते, चाहे पकड़ने वाले अंगों या कपड़ों द्वारा, तो यमराज के दूत दूर खड़े हो जाते थे। यह कार्यक्रम करीब डेढ़ घंटे तक चलता रहा तथा यह पूरा दृश्य श्री मनोहर जी ध्यान में स्पष्ट देख रहे थे। उनको यह देख कर बड़ा दुख हो रहा था। उन्होंने ध्यान में ही गुरुदेव भगवान से निवेदन किया कि आराध्यदेव जी महाराज! यदि मेरे पिता जी का अन्तिम समय आ गया हो तो उन्हें भेजने की कृपा करें। इस प्रार्थना करने के पूर्व उन्होंने दादा गुरुदेव का स्वरुप अपने पिता जी को दूर से दर्शन कराया था, जिसको उन्होंने हाथ जोड़कर प्रार्थना अर्पित किया था। उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर आराध्यदेव जी ने ध्यान में ही आदेश दिया था कि लल्ला! अपने पिता जी को श्री सिद्ध गुफा की रज खिला दो, उसके बाद त्रिवेणी का जल पिला दो एवं उसके बाद बैठकर श्री मद्भागवत गीता का पाठ करो, जिसे वे सुन सकें एवं वातावरण आध्यात्मिक बना रहे। श्री मनोहर जी ने श्री गुरु देव जी की आज्ञाओं का पालन करने के बाद श्री गीता का पाठ शुरू किया। पहले अध्याय का पाठ पूर्ण हो गया एवं दूसरे अध्याय के पूर्ण होने में कुछ श्लोक शेष थे कि श्री सुखदेव जी का आराम से शरीरान्त हो गया। श्री आराध्यदेव की शिष्य प्यार की करुण कृपा के कारण श्री सुखदेव जी अच्छी मृत्यु के अधिकारी बने। क्योंकि परम सन्त महात्मा तुलसी दास जी ने लिखा है-

''जनम-जनम मुनि जतन कराही, अन्तराम मुख आवत नाहीं''

जब भीष्म की प्रतिज्ञा भंग हुई थी

प्रेषक :– वेदव्रत द्विवेदी

महाभारत के भीषण समर यज्ञ में कौरव सेना के असंख्य वीर आहत होने लगे तो चिन्तित दुर्योधन पितामह की शरण में पहुँचा। उस समय नर–पुंगव भीष्म पितामह सेना पति थे।

''दादा जी''! –दुर्योधन ने उनके चरणों में प्रणिपात करके निवेदन किया–'' अपनी सेना का नित्य ही तीव्र गति से संहार हो रहा है। अब तो आपकी विशेष कृपा होनी चाहिए।'' ''अर्थात!' पितामह ने भर्त्सना के स्वर में कहा–''तुम्हारी दृष्टि में मैं पक्षपात करता हूँ, पाण्डवों का?''

''दादाजी! मेरा यह आशय नहीं था''– दुर्योधन विनम्र होकर बोला –''जब तक उनके किसी महारथी का पतन नहीं होगा तब तक......!'' ''कल एक पाण्डव को वीरगति प्राप्त होगी''– पितामह ने किंचित क्रुद्ध स्वर में कहा–''तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो जायेगी।''

दुर्योधन आश्वस्त होकर चला गया।

द्रौपदी को यह समाचार मिला तो बहुत चिंतित होकर भक्त वाच्छाकल्पतरु अपने सखा भगवान योगेश्वर श्री कृष्ण के पास पहुँची। श्री कृष्ण के शिविर में यह समाचार पहले ही पहुँच चुका था। ''कृष्णा! बहन!! तुम अच्छे अवसर पर आयी''– पार्थसारथी ने स्वागत किया द्रौपदी का–'किंतु तुम्हारे मुख पर आज चिन्ता की रेखायें क्यों?''

''तुम्हारे समक्ष पहुँच कर भी क्या मेरी चिंता अधिक देर टिक सकेगी?''–द्रौपदी का कण्ठ स्वर भरित हो गया था, छलकती आँखों को पोंछ कर वे बोलीं–''भरी सभा में मेरी लाज बचाने वाला सुलभ है, वही अब मेरे सुहाग की भी रक्षा करेगा''।

नीरव–निस्तब्ध अन्धकारमयी रजनी में छद्मवेशी श्री कृष्ण, द्रौपदी को लेकर पितामह के शिविर–द्वार तक पहुँचे। उस समय पितामह, कल के सैन्य संचालन की रूपरेखा के निर्णय में चिन्तित टहल रहे थे।

कल उनके हाथों किसी पाण्डव वीर का बध होगा..... खिन्नता भी समा गयी थी मन में। कैसी दुरूह है ''पितामह''–भृत्य ने प्रणिपात करके उनकी चिन्ता के प्रवाह को रोका ''एक सौभाग्यवती सन्नारी आपकी दर्शन–कामना से द्वार पर खड़ी शीत से कांप रही है।''

''इस समय, अर्द्धरात्रि को?''– पितामह ने आश्चर्य से पूछा–''कौन है वह?''

''वह अपना नाम प्रकट नहीं करना चाहती'' विनम्र सेवक ने उत्तर दिया।'' अच्छा, भेज दो उसे''– आदेश देकर पितामह मंचिका पर आसीन हुए घूंघट से मुख छिपाये कम्पिता द्रौपदी ने पितामह के पावन चरणों में अपना मस्तक रख दिया। आँखों ने श्रद्धा के दो सुमन भी उनके चरणों में अर्पित कर दिये।

''अखण्ड सौभाग्यवती भव''– पितामह का वरद हस्त द्रौपदी के मस्तक पर पहुँचा–''तुम्हें क्या कष्ट है बेटी! तुम्हारा परिचय?'' द्रौपदी ने घूंघट हटा दिया–''मैं आपकी पौत्रवधू द्रौपदी।''

''द्रौपदी!''–आश्चर्य चकित होकर पितामह ने पूछा– ''ऐसे कुसमय में, शत्रु शिविर में अकेले आने का क्या कारण है बेटी?'' ''अब तो उस कारण का समाधान हो चुका है'' – करबद्ध द्रौपदी बोली ''आपका आशीर्वाद अमोघ है, आपके श्री मुख से 'अखण्ड सौभाग्यवती भव' का वरदान पाकर मेरी चिंता तिरोहित हो गई।'' ''ओह!''– पितामह हंस कर बोले–''मैं अब समझा। जिसे श्री कृष्ण जैसा छलिया परामर्श दाता मिल गया हो। जिसके जीवन–रथ का सारथी बन चुका हो, उसकी चिन्ता उसके सन्ताप कितनी देर टिक सकते हैं?''

श्रद्धावनत द्रौपदी पुनः प्रणाम करके शिविर से बाहर चली गयी।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्री विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।।

(गीता 18/78)

अर्थात् हे राजन्! जहा योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण हैं और जहां गाण्डीव–धनुषधारी अर्जुन हैं, वही पर श्री विजय विभति और अचल नीति है–ऐसा मेरा मत है।

परम् योगनी, द्रौपदी, जितेन्द्रिय, साधन परायण और श्रद्धावान मनुष्य ज्ञान को प्राप्त करता है तथा ज्ञान को प्राप्त होकर बिना विलम्ब के तत्काल ही भगवत प्राप्ति रूप होकर परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है।

द्रौपदी ज्ञान से युक्त एक विदुषी एवं परम भक्त योगनी थी। श्रद्धा से ही परम पुरुष योगेश्वर श्री कृष्ण के दिव्य स्वरुप का दर्शन हुआ।

श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।।

(गीता 4/39)

सादर जय गुरुदेव!

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानःसर्वभूतहिते रताः।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 5/25)

अर्थात् जिनके सब पाप नष्ट हो गये है, जिनके सब संशय ज्ञान के द्वारा निवृत्त हो गये हैं, जो सम्पूर्ण प्राणियों के हित में रत हैं और जिनका जीता हुआ मन निश्चल भाव से परमात्मा में स्थित है, वे ब्रह्मवेत्ता पुरुष शान्त ब्रह्म को प्राप्त होते हैं।

● स्वास्थ्य चर्चा

'नमक बराबर' हो भोजन में नमक

भारतीय ऋषियों द्वारा प्रतिपादित सात्विक आहार से मानसिक शुद्धता की धारणा निर्मल और कपोल कल्पना मात्र नहीं थी। विभिन्न आधुनिक शोधों से इसकी पुष्टि हो रही है। आहार का मूल्यांकन, स्वास्थ्य को ध्यान में रखकर किया जाता है। नित्य के भोजन की पौष्टिकता ही शरीर के लिए लाभप्रद है। भोजन को चटपटा बनाकर ग्रहण करने से हानि ही होती है। नमक भोजन का एक अहम हिस्सा है, किंतु स्वास्थ्य को ध्यान में रखकर यदि इसका मूल्यांकन करें तो यह लाभ के बजाय हानि ही पहुंचाता है। स्वास्थ्य के लिए यह विष तुल्य माना गया है। स्वास्थ्य विशेषज्ञ डा. रेमण्ड कर्मड के अनुसार यह साक्षात् विष ही है। चिकित्सा विज्ञानी, डॉ. पेंस कॉट ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि पुराने मैक्सिको में एकेलास कलरा नामक एक जाति रहती है, इन्हें पहले नमक के बारे में कुछ पता ही नहीं था। उस समय यह कठोर परिश्रमी और दिलेर थी। किंतु आक्रांताओं द्वारा मैक्सिको पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् इस जाति में भी धीरे–धीरे नमक खाने का प्रचलन हो गया। परिणाम यह हुआ कि यह जाति कम परिश्रमी और आलसी हो गयी। ऐसे कई अन्य उदाहरण हैं जिसमें इस बात की पुष्टि होती है कि नमक शारीरिक क्षमता का ह्रास करता है।

अत्यधिक नमक का सेवन स्वास्थ्य को खराब ही नहीं करता बल्कि कई बार तो यह जानलेवा भी सिद्ध हो सकता है। ''पायनियर'' समाचार पत्र में एक समाचार छपा था जिसमें बताया गया कि अपने साथियों द्वारा उकसाने पर राजकोट में एक लड़के ने लगभग 10 तोला नमक पानी में घोला और उसे एक ही सांस में पी गया। फलस्वरूप उसे भयंकर दस्त लग गये और अस्पताल पहुँचने तक उसके प्राणपखेरू उड़ गये।

अपने प्रतिदिन के भोजन में हम जितनी चीजें लेते हैं उनमें नमक की कुछ न कुछ मात्रा अवश्य होती है। खाद्य पदार्थों में प्राकृतिक नमक अलग से लिए जाने वाले नमक से भिन्न होता है, जो हमारे शरीर के लिए लाभरूपी होता है। वस्तुतः स्वस्थ्य शरीर को अतिरिक्त नमक की आवश्यकता भी नहीं पड़ती। इसी का समर्थन आयुर्वेद भी करता है। आयुर्वेद के अनुसार हमारे खाद्य पदार्थ विशेष रूप से शाक–सब्जी अपने अन्दर जो नमक रखते हैं, उसकी मात्रा तथा गुण का अनुपात हमारे शरीर व मन के लिए कतई उपयुक्त रहता है। हमारे अस्थितंत्र के लिए यही नमक लाभदायक होती है। योग के आठ अंगों में प्रत्याहार भी एक है, जिसका मूल आधार यह है कि स्वाद पर नियंत्रण पाया जाये और अस्वाद व्रत के अन्तर्गत नमक–विहीन भोजन किया जाये। विज्ञानी भी अब एकमत से स्वीकार करते हैं कि नमक शरीर के लिए हानिप्रद है। नमक की अत्यधिक मात्रा लेने से रुग्ण व्यक्ति की चिकित्सा कुशलतम चिकित्सक के लिए भी कठिन होती है। नमक एक तीव्र प्रदाह कारण पदार्थ है, जो घाव अथवा जली हुई त्वचा पर लगाये जाने से असह्य वेदना उत्पन्न कर देता है। हमारे शरीर के आंतरिक अंग तो बहुत

कोमल होते हैं। नमक की अत्यधिक मात्रा एक साथ यदि उनके संपर्क तक पहुंच जाये तो वह इन अंगों के लिए कितना खतरनाक सिद्ध होते होंगे इसकी सहज कल्पना की जा सकती है।

आहार विशेषज्ञों के अनुसार शरीर के लिए आवश्यक नमक की मात्रा अन्न एवं फलों तथा शाक से मिल जाती है। अतः भोजन में फल–सब्जियाँ आदि का कम–से–कम एक तिहाई भाग होना अति आवश्यक है।

यदि व्यक्ति को आजीवन निरोगी रहना है तो उसे इस बात का विशेष ध्यान सदैव रखना चाहिये। इनसे अलग "फ्रूट साल्ट" शरीर की चयापचय प्रक्रिया को संतुलित बनाये रखता है।

●●●

दाता के दरबार में....

–जगदीश राय बंसल–

दोहा–
दाता के दरबार में, सब दुख दर्द मिटाए जाते हैं।
श्रद्धा से जो नमन करे, वो सीने से लगाए जाते हैं।।
गुरु चन्द्रमोहन ने खेचरी का अभ्यास किया।
ब्लेड उठा कर अपना तन्तु काट लिया।।
ध्यान में प्रभू जी बोले, रे अन्यायी जे तू खेचरी करता
तू देख जरा गंगा जल में, यों नंगे पैरों चलता
सिद्धों का दर्श दिया, ब्लेड उठा कर अपना तन्तु काट लिया।।गुरु——
अब जोश मुझे था आया, झट ब्लेड तन्तु पर चलाया
मेरा खून से मुंह भर आया, प्रभू जी ने ब्लेड छुड़ाया
खबर दार किया– ब्लेड उठा कर अपना तन्तु काट लिया।।गुरु——
मैंने रतन लाल ध्यान लगाई, प्रभू जी ने बूंटी दिखाई
रगड़ कर मुंह में भरवाई, वरना गुंगा ही रह जाई
तुरत उपचार किया–ब्लेड उठा कर अपना तन्तु काट लिया।।गुरु——
श्री मुझ पर प्रभू की छाया, मुझे तुरन्त पास बुलाया
खेचरी पर बैन लगाया, मुझे बार–बार समझाया
गुंगा बोल दिया– ब्लेड उठा कर अपना तन्तु काट लिया।।गुरु——
खेचरी तो मेरी मुकगी, श्री चरणों में निष्ठा बढ़गी
न्यौली–वस्ति सफलगी, कनखल की सेवा जुड़गी
'अधम' भुगतान किया——ब्लेड उठा कर अपना तन्तु काट लिया।।गुरु——

श्री सिद्धयोग पत्रिका के आय–व्यय का विवरण

वर्ष : 2007–2008

प्राप्तियाँ	व्यय
रु. 32767.00 पिछला सकड़ बाकी रु. 32430.00 सेविंग खाते में जमा रु. 337.00 नकद राशि	रु. 101691.00 कागज–प्रिंटिंग खर्च
रु. 92587.00 वार्षिक शुल्क नकद	रु. 8427.00 टिकिट/कार्यालय खर्च
रु. 14100.00 आजीवन शुल्क	रु. 53528.00 सेविंग खाते में जमा
रु. 6451.00 चैक से प्राप्त राशि	कुल योग : रु. 163646.00
रु. 16656.00 सहयोग राशि नकद रु. 500.00 बालमुकुन्द तिवारी (ललितपुर) रु. 1100.00 रघुनाथ वाचस्पति (गोरखपुर) रु. 201.00 रतनचन्द मित्तल (करनाल) रु. 500.00 कुलदीप शर्मा (पिंजौर) रु. 251.00 जे.पी. गुप्ता (गंगापुर सिटी) रु. 100.00 दिनेश चन्द्र गुप्ता (करौली) रु. 5100.00 सिरसा मण्डल रु. 1100.00 ओम प्रकाश गुप्ता (सिरसा) रु. 1100.00 जगदीश गुप्ता (कालपी) रु. 2001.00 डॉ. राजीव शर्मा (दिल्ली) रु. 501.00 आर.के. श्रीवास्तव (ग्वालियर) रु. 1100.00 उपेन्द्र अग्रवाल (इलाहाबाद) रु. 2100.00 जगदीश गुप्ता (कालपी) कुल योग : रु. 16655.00	
रु.1085.00 सेविंग खाते से प्राप्त ब्याज	
कुल योग : रु 1,63,646.00	

– व्यवस्थापक
'सिद्धयोग' मासिक

शोक संवेदना

1. बड़े दुःख के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि हमारे वरिष्ठ गुरुभाई राजकुमार सिंह गहुआ खेड़ा वालों का 11 जनवरी 2008 को देहावसान हो गया है। वे 93 वर्ष के थे तथा गुरुदेव के पुराने शिष्यों में से एक थे। इस दुःखद वेला पर सिद्धयोग परिवार दुःखी जनों को सान्त्वना प्रेषित करता है तथा दुःख में सहभागी है।

2. दिल्ली (पश्चिम विहार) की गुरु बहिन श्रीमती कमला शर्मा का गत 30 जनवरी 2008 को देहान्त हो गया है। वे हमारे स्व. गुरुभाई आर.डी. शर्मा की धर्मपत्नी थी। वे पिछले काफी समय से बीमार थीं तथा 77–78 वर्ष की थी। उनके परिवार में उनकी पुत्री निर्मल देवी है तथा उनके दामाद अशोक शर्मा है। इस दुःख के समय पर शोक संतप्त परिवारी जनों को आश्रमवासी तथा सिद्धयोग परिवार अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

श्री प्रभुजी से प्रार्थना है कि उपरोक्त दोनों दिवंगत आत्माओं को वे अपने मुक्ति प्रदाता चरणों में स्थान देकर सद्गति प्रदान करें। —सम्पादक, सिद्धयोग

सिद्धयोग मासिक (पत्रिका) का विवरण

1. प्रकाशन का नाम	:	श्री सिद्धगुफा, सवांई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)
2. प्रकाशन का अवधिक्रम	:	मासिक
3. मुद्रक का नाम	:	दासलाल शर्मा
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	श्री सिद्धगुफा, सवांई (एत्मादपुर) आगरा
4. प्रकाशक का नाम	:	दासलाल शर्मा
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	श्री सिद्धगुफा, सवांई, आगरा
5. संपादक का नाम	:	दासलाल शर्मा
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	श्री सिद्धगुफा, सवांई, आगरा
7. स्वत्वाधिकारी	:	दासलाल शर्मा

मैं दासलाल ब्रह्मचारी एतद् द्वारा यह घोषित करता हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य है।

दिनांक : 28 फरवरी 2008

दासलाल ब्रह्मचारी
कृते श्री सिद्धगुफा प्रकाशन

।। श्री रामलाल प्रभवे नमः।।

श्री महाप्रभु रामलाल जी महाराज

का

पावन जयन्ती महोत्सव

अपने आश्रम श्री सिद्धगुफा सवांई (आगरा) में योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के 120 वें पावन प्राकट्य दिवस के उपलक्ष्य में राम नवमी महोत्सव चैत्र शुक्ला सप्तमी, अष्टमी, नवमी तदनुसार , शनिवार, रविवार तथा सोमवार दिनाक, 12, 13 व 14 अप्रैल 2008 को धूमधाम से मनाया जा रहा है। चैत्र नवरात्रारम्भ दि. 7 अप्रैल से प्रारम्भ हैं, इसी दिन से गुफा में नवरात्र की अखण्ड ज्योति भी जलाई जायेगी।

सभी गुरुभाई बहिनों से नम्र निवेदन है कि वे इस भव्य आयोजन में सपरिवार इष्ट मित्रों सहित सम्मिलित होकर श्री महाप्रभु जी का आशीर्वाद एवं सत्संग का लाभ प्राप्त करें। परम पावन सिद्धभूमि का दर्शन लाभ करें व अपने को धन्य बनावें।

जय गुरुदेव जी की!

:- निवेदक :-

समस्त आश्रम वासी एवं श्रद्धालु भक्त मण्डल

श्री गुफा, सवांई (एत्मादपुर)

आगरा – 283202

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

[illegible]

1. [illegible]

2. [illegible]

3. [illegible] 1000 [illegible] 400.00 [illegible]

4. [illegible] 5.50 [illegible]

5. [illegible]

6. [illegible]

7. [illegible]

श्री सिद्धयोग प्रशिक्षण केन्द्र
सेवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

संस्थापक :– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक श्री [illegible] राष्ट्रीय [illegible] प्रिंटिंग [illegible], आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई ([illegible] प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य [illegible]